कालिदास की महान् कृतियाँ

कालिदास की महान् कृतियाँ

कालिदास की महान् कृतियाँ

लेखक के विषय में

श्री हरिवंश लाल लूथरा ने अपना कार्य-काल प्राध्यापक के पद से प्रारंभ किया और कुछ ही वर्षों में राजकीय कालेज, रोहतक में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष बन गये। ये तीन वर्ष के लिए राजकीय डिग्री कालेज, पोर्ट ब्लेयर (अन्दमान तथा निकोबार द्वीप-समूह) में प्रिंसिपल के पद पर भी आसीन रहे। एक लम्बे समय तक इन्होंने भारत सरकार के शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय में कई उच्च पदों पर काम किया। सेवा-निवृत्ति के समय ये नेशनल बुक ट्रस्ट के संयुक्त निदेशक थे।

श्री लूथरा ने कापी राइट सम्बन्धी विषयों पर चर्चा करने के लिए संयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व किया है। इन्होंने स्कूलों एवं कालेजों के छात्रों के लिये पुस्तकें लिखी हैं तथा आकाशवाणी के भिन्न-भिन्न केन्द्रों से भारतीय साहित्य एवं संस्कृति से सम्बद्ध कई विषयों पर वार्ताएं प्रसारित की हैं। पुस्तक प्रकाशन तथा कापी राइट के विभिन्न पहलुओं पर इनके लेख देश की विख्यात पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं। इन्होंने एक चिर-प्रतिष्ठित प्रकाशन-गृह द्वारा प्रकाशित कई विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों का सम्पादन भी किया है।

इन दिनों ये पुस्तक प्रकाशन संस्थान के महासचिव हैं।

पोती श्वेता
और
नाती राघव
के नाम

कालिदास की महान् कृतियाँ

हरिवंश लाल नूपग

पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी

हमारी अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

प्रथम संस्करण : 1989

मूल्य : 20 रुपये

Code No. 21768

प्रकाशक : पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, 888, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग, नई दिल्ली-110 005.
दूरभाष : कार्यालय : 770067, 526933, 776058, आवास : 586788, 5715182, 5721321.
मुद्रक : पियूष प्रिंटर्स पब्लिशर्स (प्रा०) लि०, G-12, उद्योग नगर, रोहतक रोड इंडस्ट्रियल एरिया
नई [illegible] 10 041, टेलीफोन : 5472440

कालिदास का जीवन-परिचय

महान् कवि कालिदास संस्कृत साहित्यकाश का देदीप्यमान नक्षत्र है। निष्ठुर शताब्दियों की धूल इसकी चमक को धुंधला नहीं पाई है। उत्तरकालीन कवियों ने इस महान् विभूति को श्रद्धांजलि अर्पित करने में होड़-सी लगा दी है। एक विख्यात कवि ने तो उन्हें कवि-कुल-गुरु की उपाधि दी है। पाश्चात्य आलोचकों ने भी इनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है जिसके फलस्वरूप, कालिदास की ख्याति का सौरभ देश की सीमाओं को पार कर, विश्व भर में फैल चुकी है।

आश्चर्य की बात है कि भारत के सर्वश्रेष्ठ लेखक के जन्म, निवास-स्थान तथा व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में हमें निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनके ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि इनका जन्म सम्भवत: ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी में मध्य प्रदेश में मालवा के आस-पास हुआ था और उनके जीवन का अधिकांश भाग राज्य की राजधानी उज्जयिनी में व्यतीत हुआ था। ये विक्रमी संवत के प्रवर्तक महाराज विक्रमादित्य के राज-कवि थे। धर्म, अर्थ, काम तथा व्याकरण सम्बन्धी शास्त्रों के ये प्रकाण्ड पण्डित थे। धनुर्वेद, आयुर्वेद तथा ज्योतिष शास्त्रों का भी इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। नृत्य, संगीत, चित्र आदि कलाओं से इनका घनिष्ठ परिचय था। ऐतिहासिक एवं भौगोलिक तथ्यों से ये भली भांति परिचित थे।

कालिदास की साहित्यिक उपलब्धियां अनुपम हैं। ये जितने महान् कवि थे, उतने ही बड़े नाटककार भी। रघुवंश, कुमारसम्भव तथा मेघदूत इनके सर्वश्रेष्ठ काव्य हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल , मालविकाग्निमित्र तथा विक्रमोर्वशीय इनकी अमर नाट्य कृतियां हैं। इनके अतिरिक्त तीस से भी अधिक ऐसे ग्रन्थ हैं जिनकी रचना का श्रेय, कुछ एक लेखकों एवं समालोचकों ने कालिदास को दिया है किन्तु इनका साहित्यिक स्तर इतना ऊंचा नहीं कि रघुवंश तथा अभिज्ञानशाकुन्तल जैसी अद्भुत कृतियों के स्रष्टा को, उनका रचयिता माना जा सके।

कालिदास की कृतियां, पद-लालित्य, रचना-चातुर्य, कल्पना-शक्ति, चरित्र-चित्रण, तथा अलंकारों के सुन्दर प्रयोग के लिए विख्यात हैं। उपमाओं के सौष्टव मे तो वे समस्त संस्कृत साहित्य में अद्वितीय हैं। इनके अतिरिक्त कवि-कुल-गुरु की कला की कुछ अन्य विशेषतायें भी हैं जिनसे उनका साहित्य उत्कृष्ट हो उठा है। उनका प्रकृति-प्रेम तथा शृंगारिक-प्रेम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण इन्हीं विशेषताओं में से हैं। कालिदास प्रकृति-सुन्दरी के अनन्य प्रेमी थे। उनका प्रकृति-निरीक्षण बडा विलक्षण था। प्राकृतिक सौन्दर्य से सुसज्जित वनों एवं पर्वतों से उनका घनिष्ठ परिचय था। यही कारण है कि उनके प्रकृति-वर्णन में इतनी सजीवता, रमणीयता, भव्यता और स्वाभाविकता है।

कालिदास ने प्रकृति के वाह्य रूप का ही वर्णन किया हो, ऐसी बात नहीं। उनकी दृष्टि में सागर और नदियां, पर्वत तथा वन, वृक्ष एवं पुष्प भाव-रहित जड़ पदार्थ नहीं हैं। कवि के भावुक कल्पना-चक्षुओं को वे सजीव दीख पड़ते हैं। उन्हें पशु-पक्षी भी मनुष्यों की तरह संवेदनशील दिखाई देते हैं। मानव जगत के प्रति इन सबके हृदय में सहानुभूति है। 'मेघदूत' में मेघ को केवल मानवोचित कार्य ही नहीं सौंपा गया, अपितु आदि से अन्त तक, उससे मानव-आचरण की अपेक्षा भी की गई है। 'विक्रमोर्वशीय' में, उर्वशी के वियोग में विलाप करते हुए पुरुरवा को देखकर समस्त प्रकृति सहज सहानुभूति से व्याकुल हो उठती है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला के पिता के आश्रम से पति-ग्रह की ओर प्रस्थान करते समय तपोवन के वे सभी पेड़, पुष्प तथा पशु-पक्षी आन्तरिक वेदना से व्यथित हो उठते हैं जो उसके साथ घनिष्ठ स्नेह के सूत्र में वन्धे थे।

कवि कालिदास मुख्य रूप से शृंगार रस के कवि है। शृंगार का आधार प्रेम है। प्रेम के विषय में कवि की अपनी ही धारणा है। इन्होंने शारीरिक सौन्दर्य को प्रेम का सर्वस्व नहीं माना। केवल सौन्दर्य के आधार पर जिस प्रेम का जन्म हो, वे उसे केवल काम या वासना समझते हैं। इस प्रकार का प्रेम न तो स्थायी होता है, न कल्याणकारी ही। जैसे सोना अग्नि में पड़कर कुन्दन के रूप में निखर उठता है, वैसे ही प्रेम, तप एवं त्याग की भट्टी में परिपक्व होता है। 'मेघदूत' में यक्ष और उसकी पत्नी विरहाग्नि में जलते हैं। पार्वती और शकुन्तला को भी प्रेम के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तपस्या का आश्रय लेना पड़ता है। 'कुमारसम्भव' में, अनिन्द्य रूप-यौवन से अलंकृत पार्वती ने जब शंकर के चरणों में प्रणाम किया तो उसके अलौकिक सौन्दर्य को देखकर उनका मन क्षण भर के लिए चंचल हो उठा। किन्तु उस अपूर्व सौन्दर्य से जो आनन्द-वृष्टि हुई, उसका विश्वास महादेव ने नहीं किया। पार्वती, अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी होते हुए भी शंकर को पाने में सफल न हो सकी। उसे निराश हो कामना-पर्ति के लिए साधना तथा तपस्या का आश्रय लेना पड़ा। एक दिन शकुन्तला को भी अपने यौवन का अपमान करा कर, दुष्यन्त के दरबार से लौटना पड़ा था। निस्सन्देह, दुष्यन्त प्रथम मिलन में शकुन्तला के प्रति आकर्षित हुए थे। शकुन्तला भी उनके तेज एवं रूप पर मुग्ध हो गयी थी। कवि ने सोचा कि यह प्राकृतिक आकर्षण स्थायी नही हो सकेगा। उन्हें दुर्वासा के शाप का शिकार होना पड़ा। कवि ने पृथ्वी के इस अस्थिर मिलन की अपेक्षा, स्वर्ग के आत्मिक मिलन में ही अपनी आस्था व्यक्त की है।

महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि हैं। वे हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक हैं। उनकी कृतियां भावात्मक समन्वय को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करती हैं। उनकी रचनाओं से ली गई कथायें केवल भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी पाठकों को रोचक लगेंगी।

प्राक्कथन

भारत में अधिकांश बच्चों के लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिससे वे शिक्षण काल में देश के प्राचीन साहित्य एवं कला का ज्ञान प्राप्त कर सकें। अतः वे अपने ही देश के महान् मनीषियों की साहित्यिक एवं कलात्मक कृतियों से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। यही कारण है कि हमारे युवाओं को न तो अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक धरोहर की जानकारी है, न ही पारम्परिक रीति-रिवाजों का ज्ञान। वे उन भारतीय मूल्यों से भी अपरिचित हैं जिनकी प्रेरणा से हमारे पूर्वजों ने जीवन को नई दिशा प्रदान करने में सफलता प्राप्त की थी।

इस स्थिति को किसी हद तक सुधारने के लिये, भारत में, हाल ही में, कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं जो हमारे प्राचीन धार्मिक तथा अन्य चिर-प्रतिष्ठित ग्रन्थों, उपदेशात्मक रचनाओं तथा लोक-कथाओं पर आधारित हैं। "कालिदास की महान् कृतियाँ" भी इस दिशा में एक और प्रयास है।

कालिदास, निस्सन्देह, संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रचयिता हैं। अपनी सृजनात्मक क्षमता, विलक्षण बुद्धि, अद्भुत कल्पना-शक्ति एवं अपूर्व काव्य-प्रतिभा के बल पर उन्होंने अमर साहित्य का सृजन किया है, जिसने उन्हें विश्व के गिने-चुने महान् साहित्यकारों की प्रथम पंक्ति में ला खड़ा किया है।

स्पष्ट है कि कालिदास की रचनाओं के आधार पर, कम आयु वर्ग के छात्रों के लिए संक्षिप्त रूप में लिखी गई कथाओं के द्वारा उनकी बहुमुखी प्रतिभा से पूर्ण न्याय नहीं किया जा सकता। हां इतना ज़रूर है कि इन कहानियों से तरुण पाठक कवि की कल्पना की अनूठी उड़ान, प्रकृति के विशद वर्णन तथा भिन्न-भिन्न घटनाओं एवं प्रसंगों को कथा-सूत्र में पिरोने के विचित्र कौशल का कुछ आभास प्राप्त कर सकेंगे। इन कथाओं में, पाठक भारतीय संस्कृति के दर्शन भी कर पायेंगे जिसे कालिदास की कृतियां निरूपित करती हैं।

संस्कत साहित्य में तीस से अधिक ग्रन्थ हैं जिन्हें समय-समय पर कालिदास की रचनाएं बताया गया है। किन्तु कई लेखकों तथा आलोचकों ने उनमें बहुत-सी रचनाओं की प्रामाणिकता में सन्देह व्यक्त किया है। मैंने इस पुस्तक में सम्मिलित कथाओं के लिए केवल उन्हीं ग्रन्थों को चुना है जिन्हें सर्वसम्मति से महान् कवि कालिदास की कृतियां माना गया है।

हरिवंश लूथरा

45 सी/सी सिद्धार्थ एक्सटैंशन.

नई दिल्ली -110 014

विषय-सूची

1. रघुवंश

रघुवंश 19 सर्गों पर आधारित एक महाकाव्य है। इसमें रघुकुल के प्रतापी राजाओं की गौरव-गाथा का वर्णन है। यह दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम जैसे यशस्वी नरेशों की चित्रशाला है जिसमें कालिदास ने सभी राजाओं को सुन्दर ढंग से चित्रित किया है, किन्तु राम के चित्र की छटा ही निराली है।

कालिदास तथा उनकी अमर कृति रघुवंश पर टिप्पणी करते हुए, प्रख्यात पाश्चात्य विद्वान् एवं समालोचक मोनियर विलियम्स ने लिखा है—"काव्य-प्रतिभा की प्रचुरता, कल्पना-शक्ति के बाहुल्य, मानव-हृदय के गूढ़ ज्ञान, उसके अत्यन्त सूक्ष्म एवं सुकुमार भावों के चित्रण तथा मनोभावों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं में संघर्ष के परिबोध की दृष्टि से कालिदास की कोई भी अन्य रचना, 'रघुवंश' का मुकाबला नहीं कर सकती। निस्सन्देह 'रघुवंश' ही एक ऐसा महाकाव्य है जिस के बल पर कालिदास को भारत का शेक्सपियर कहा जा सकता है।"

सूर्यवंश, प्राचीन भारत में, राजाओं का एक सुप्रसिद्ध वंश था। उसने देश में बहुत लम्बे समय तक शासन किया। उस वंश में अनेक प्रतापी एवं यशस्वी राजा हुए जिन के गुणों की गाथा देश के प्रायः सभी भागों में आज भी प्रचलित है। रघुवंश की स्थापना वैवस्वत नाम के राजा ने की थी। उसके उत्तराधिकारियों में दिलीप का नाम सुविख्यात है। वे चरित्रवान् थे और प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा से पालन करते थे। प्रजा भी उन्हें जी-जान से चाहती थी। अयोध्या उनकी राजधानी थी। ईश्वर की कृपा से

उन्हें सुख-सुविधा के सभी साधन उपलब्ध थे, किन्तु उनके कोई संतान न थी। इस अभाव से वे अत्यन्त दुःखी रहते थे।

एक दिन राज्य का कार्य-भार मन्त्रियों को सौंप, राजा दिलीप महारानी सुदक्षिणा के साथ, अपने कुल-गुरु वसिष्ठ के आश्रम की ओर चल पड़े। वहां पहुंच कर दोनों ने गुरु के चरण स्पर्श कर, उनका अभिवादन किया। कुशल प्रश्न के बाद, वसिष्ठ ने राजा से उनके आने का कारण पूछा। मन की व्यथा को व्यक्त करते हुए दिलीप ने कहा, "गुरुदेव! पुत्र के न होने के कारण मुझे सारा साम्राज्य और सभी सुख व्यर्थ प्रतीत होते हैं। मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे मैं पुत्र प्राप्त कर सकूं।"

राजा की बात सुन कर वसिष्ठ कुछ देर के लिए ध्यान-मग्न हो गए। फिर वह बोले, "वत्स दिलीप! तुम्हें याद होगा कि असुरों के साथ युद्ध में देवराज इन्द्र की सहायता करने के बाद जब तुम अपनी राजधानी को लौट रहे थे तो रास्ते में तुम कल्पतरु के पास से गुजरे थे जिसके नीचे कामधेनु बैठी थी। अपनी पत्नी के विचारों में खोये होने के कारण तुमने उस दिव्य गौ की ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया था। कामधेनु इसे अपना अपमान समझ, रुष्ट हो गई थी और उसने तुम्हें शाप दिया था, "जब तक तुम मेरी संतान की सेवा नहीं करोगे, तुम स्वयं संतान के सुख से वंचित रहोगे।" गुरु वसिष्ठ ने यह भी बताया कि–"कामधेनु पाताल चली गई है किन्तु सौभाग्य से उसकी पुत्री नन्दिनी हमारे पास इसी आश्रम में है। यदि तुम और तुम्हारी पत्नी मन लगा कर उसकी सेवा करो तो हो सकता है कि वह प्रसन्न हो कर तुम्हारी मनोकामना पूरी कर दे।"

राजा ने गुरु के सुझाव को आदेश मानकर शिरोधार्य किया और पति-पत्नी दोनों दत्तचित्त हो कर, नन्दिनी की परिचर्या में लग गए। अगले दिन प्रातः महारानी सुदक्षिणा ने नन्दिनी की विधि-पूर्वक पूजा की। दिलीप ने बछड़े को दूध पिलाया और गाय को चराने के

लिये स्वयं वन में ले गये। वे साये की तरह उसका पीछा करते रहे और धनुष-वाण संभाले, सदा उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहे। वे उसे हरी और नरम घास खिलाते, उस की पीठ थपथपाते और मक्खियों और मच्छरों को उड़ाते। दिलीप तभी बैठते जब नन्दिनी बैठ जाती और तभी पानी पीते जब वह अपनी प्यास बुझाती। सायंकाल वे उसके पीछे-पीछे आश्रम को लौट आये। सुदक्षिणा ने आगे आकर फिर उस की पूजा की। दूध दुहने के बाद, राजा और रानी काफी देर तक उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगे रहे और विश्राम के लिए तभी गए जब वह सो गई।

इसके बाद उनका यही दैनिक कार्यक्रम बन गया। जब इस प्रकार इक्कीस दिन व्यतीत हो गए तो गौ नन्दिनी ने राजा की श्रद्धा एवं भक्ति की अधिक कठिन परीक्षा लेने की बात सोची। अगले दिन चरते-चरते वह हिमालय की एक गुफ़ा में घुस गई। वहां एक सिंह ने उसे अचानक आ दबोचा। उसकी भयातुर चीत्कार ने राजा का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने सिंह को मारने के लिए, तुरन्त धनुष हाथ में लिया, किन्तु तरकश से तीर निकालने के लिए ज्यों-ही हाथ बढ़ाया, उनकी अंगुलियां उससे चिपक गईं। उन्हें छुड़ाने के लिए उनके सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। यह देख कर, सिंह मनुष्य वाणी में बोला—"राजन्, मुझे मारने का यत्न मत करो। मैं भगवान् शंकर का सेवक हूं। वह देवदार का वृक्ष जो सामने दिखाई देता है भगवान् शंकर को पुत्र की तरह प्यारा है। देवी पार्वती ने उसे बड़े स्नेह से अपने हाथों से सींचा है। एक बार एक जंगली हाथी ने रगड़ से उसकी छाल उखाड़ दी थी। इससे पार्वती को बहुत दुःख हुआ था। तभी से शंकर ने उस वृक्ष की रक्षा के लिए मुझे नियुक्त कर रखा है। जो भूला-भटका पशु इधर आ निकलता है, उसी को खा कर मैं अपनी भूख मिटाता हूं। सौभाग्य से आज यह गौ यहां ठीक समय पर आ पहुंची है। यह मेरे भोजन के लिए काफी होगी। इसे बचाने का

उन्हें सुख-सुविधा के सभी साधन उपलब्ध
संतान न थी। इस अभाव में वे अत्यन्त दुः
एक दिन राज्य का कार्य-भार मन्त्रियों
महारानी सुदक्षिणा के साथ, अपने कुल-गुरु
ओर चल पड़े। वहां पहुंच कर दोनों ने गुरु
उनका अभिवादन किया। कुशल प्रश्न के बा
उनके आने का कारण पूछा। मन की व्यथा
दिलीप ने कहा, "गुरुदेव! पुत्र के न होने के
साम्राज्य और सभी सुख व्यर्थ प्रतीत होते हैं। मुझे
बताइए जिससे मैं पुत्र प्राप्त कर सकूं।"

राजा की बात सुन कर वसिष्ठ कुछ देर के लिए
गए। फिर वह बोले, "वत्स दिलीप! तुम्हें याद हो
साथ युद्ध में देवराज इन्द्र की सहायता करने के बाद
राजधानी को लौट रहे थे तो रास्ते में तुम कल्पतरु के
थे जिसके नीचे कामधेनु बैठी थी। अपनी पत्नी के वि
होने के कारण तुमने उस दिव्य गौ की ओर यथोचित
दिया था। कामधेनु इसे अपना अपमान समझ, रुष्ट हो
उसने तुम्हें शाप दिया था, "जब तक तुम मेरी संतान की
करोगे, तुम स्वयं संतान के सुख से वंचित रहोगे।" गुरु व
भी बताया कि—"कामधेनु पाताल
उसकी पुत्री नन्दिनी
तुम्हारी पत्नी मन
वह प्रसन्न हो कर

राजा ने गुरु के
पति-पत्नी दोनों

अगले दिन प्रात
पूजा की। दिलीप

कुछ समय बाद, महारानी सुदक्षिणा ने शुभ घड़ी में पुत्र को जन्म दिया। अयोध्या की समस्त प्रजा, इस सुखद समाचार को पा खुशी से झूम उठी। नवजात शिशु का नाम रघु रखा गया। समय पाकर, रघु बड़ा हुआ। वह अब एक सुन्दर एवं मेधावी युवक था। उसने शीघ्र ही शिक्षा की भिन्न-भिन्न शाखाओं में प्रवीणता प्राप्त कर ली। विद्या ने उसे अधिक विनीत बना दिया। यथा समय उसका विवाह हो गया और पिता ने उसे यवराज घोषित कर दिया।

महाराज दिलीप ने निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ किए और उन सब में अश्व की रक्षा का भार रघु को सौंपा गया। जब देवताओं के राजा इन्द्र ने दिलीप के निन्यानवे यज्ञों की समाप्ति की बात सुनी, तो वे भयभीत हो उठे क्योंकि सौवें यज्ञ की सफलता से सम्पन्न होने पर, महाराजा दिलीप, उनकी पदवी पर अधिकार जमा सकते थे। इस सम्भावित विपत्ति से वचने के लिए, देवराज इन्द्र ने चुपके से उनके यज्ञ का अश्व चुरा लिया। अश्व की रक्षा के लिए उत्तरदायी सैनिक विचलित हो उठे किन्तु रघु को नन्दिनी के सौजन्य से उस चोरी का पता चल गया और उन्होंने इन्द्र को तुरन्त युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। देवेन्द्र राजकुमार रघु के साहस एवं शौर्य को देखकर चकित रह गये। उन्होंने यज्ञ का घोड़ा तो वापस नहीं किया किन्तु महाराजा दिलीप को सौ अश्वमेध यज्ञों से प्राप्य पुण्यों के सभी लौकिक एवं आध्यात्मिक लाभ मिल गए।

कुछ समय बाद रघु को राज्य-भार सौंप कर महाराजा दिलीप और महारानी सुदक्षिणा, तपस्या के लिए वनों में चले गए।

राजगद्दी पर बैठते ही रघु का प्रताप चारों दिशाओं में फैल गया। देश में सभी ओर सुख-चैन की वंसी बजने लगी। लोगों के मन राजा के प्रति स्नेह,सम्मान और श्रद्धा से भर उठे। उनके शासन में प्रजा, राजा दिलीप को भी भूल-सी गई।

शरद्-ऋतु के आने पर, महाराज रघु बहुत बड़ी सेना लेकर.

यत्न मत करो। तुम अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुके हो। तुमने दिखला दिया है कि गुरु के प्रति तुम्हारे मन में कितनी श्रद्धा है। अब तुम आश्रम को लौट जाओ।''

जब राजा दिलीप ने हर तरह से अपने आपको विवश पाया तो उन्होंने हाथ जोड़ कर सिंह से प्रार्थना की, ''मैं सर्वशक्तिमान् शिव का बड़ा सम्मान करता हूं किन्तु अपने पूज्य गुरु की गौ को अपनी आंखों के सामने मरते हुए नहीं देख सकता। तुम इस गौ को छोड़ दो और मुझे खा कर अपनी भूख को शान्त कर लो।''

यह कहकर राजा ने अपने आप को शेर के आगे समर्पित कर दिया और उसके आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच आकाश से फूलों की वर्षा हुई और दिलीप के कानों में नन्दिनी की मधुर वाणी सुनाई दी--''वत्स, उठो। मैंने केवल तुम्हारी श्रद्धा एवं भक्ति की परीक्षा ली थी। मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हूं। वर मांगो।''

राजा ने सिर उठाया। शेर का कहीं पता न था। उन्होंने नन्दिनी को प्रणाम किया और एक ऐसे यशस्वी पुत्र के लिए प्रार्थना की जो उनके वंश को चला सके। नन्दिनी ने राजा की मनोकामना को पूरा करने का वचन दिया और उन्हें एक दोने में दूध दुहकर पीने के लिए कहा।

तत्पश्चात् राजा और गौ, दोनों सायंकाल आश्रम को लौट आए। दिलीप की प्रसन्न मुख-मुद्रा को देख कर गुरु वसिष्ठ को विश्वास हो गया कि राजा के मन की मुराद पूरी हो गई है। नन्दिनी के वरदान की बात सुन कर, महारानी सुदक्षिणा भी आनन्द-विभोर हो उठी। राजा ने बछड़े को दूध पिलाने के बाद,दिव्य गौ के कथनानुसार उसका दूध पिया। उसके बाद शीघ्र ही राजा दिलीप और महारानी सुदक्षिणा, गुरु वसिष्ठ से आशीर्वाद प्राप्त कर, राजधानी को लौट आए।

विवेकशील शिष्य ने आवश्यकता से अधिक धन लेने से इंकार कर दिया। चलते समय कौत्स ने राजा को आशीर्वाद दिया—"राजन्! तुम्हें भी वैसा ही यशस्वी एवं प्रतापी पुत्र प्राप्त हो जैसा तुम्हारे पिता को मिला है।" सूर्यवंशी राजाओं में रघु को जो स्थान प्राप्त है, वह इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि बाद में यह वंश रघुवंश के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया।

कुछ समय बाद, रघु को तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम अज रखा गया। शौर्य, गुण तथा रूप-रंग में वे अपने पिता के समान थे। समय पाकर वे युवावस्था को प्राप्त हुए। इसी बीच विदर्भ के राजा भोज ने अपनी बहन इन्दुमती के स्वयंवर की घोषणा की। उसने अज को भी उसमें आमन्त्रित किया। अज बड़े ठाठ-बाट के साथ विदर्भ पहुंचे।

स्वयंवर-मण्डप को सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया था। उसकी शोभा देखते ही बनती थी। इन्दुमति को जीवन-साथी के रूप में पाने के लिए, वहां भिन्न-भिन्न देशों के राजकुमार इकट्ठे हुए थे। वे सुन्दर वेष-भूषा तथा बहुमूल्य आभूषणों से सुसज्जित थे। किन्तु अज की छवि निराली ही थी। वे उन सबमें इस प्रकार दीख पड़ते थे जैसे तारों में चांद।

नियत समय पर इन्दुमति एक पालकी में वहां पहुंची। वह सचमुच विधाता की अपूर्व रचना थी। उसके प्रवेश करते ही, सभी राजकुमारों की दृष्टि उस पर जा टिकी। उसकी परिचारिका सुनन्दा, सभी उपस्थित राजकुमारों का बारी-बारी से परिचय देने लगी। उसने राजकुमारी को प्रत्येक पुरुष के वंश, शौर्य तथा उपलब्धियों से अवगत कराया।

इन्दुमति मगध, अंग, अवन्ति, मथुरा, कलिंग आदि के शासकों को निहारती हुई आगे निकल गई। उसने उनकी ओर विशेष ध्यान

साम्राज्य के विस्तार के लिए निकल पड़े। उन्होंने सर्वप्रथम पूर्व में वंग-देश को पराजित किया। फिर कलिंग को जीत कर वे मलयाचल तक जा पहुंचे। दक्षिण में पाण्ड्य राजा भी उनकी शक्ति के सामने टिक न सका। सह्याद्रि को पार कर वे पश्चिम की ओर बढ़े। पश्चिमी देश में अश्वारोही राजाओं को अपने अधीन करते हुए वे सिन्धु नदी के तट पर जा पहुंचे। उन्होंने हूणों को खदेड़ा। काबुल का राजा भी उनकी ताव न ला सका। कम्बोज को हरा कर वे हिमालय पर्वत पर चढ़ गए। वहां पहाड़ी आदिम जातियों से उन का घमासान युद्ध हुआ। तब वे पूर्व दिशा की ओर बढ़े। लौहित्य नदी को पार कर, रघु की सेनाएं, प्राग्ज्योतिष (असम) में घुस गईं। वहां के राजा ने, बिना युद्ध किये, उनके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार रघु दिग्विजय करके अयोध्या लौट आए। तब उन्होंने विश्वजित् यज्ञ किया और उसमें सर्वस्व दान कर दिया।

ठीक उसी समय, महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स वहां आ पहुंचे। गुरु को दक्षिणा देने के लिए उन्हें स्वर्ण मुद्राएं चाहिएं थीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि महाराजा रघु अपनी सारी धन-दौलत दान कर चुके हैं तो उन्हें मन की बात कहने में संकोच हुआ। किन्तु राजा के आग्रह करने पर उन्होंने बताया कि गुरु को देने के लिए उन्हें चौदह करोड़ मुहरें चाहिएं। राजा ने उन्हें सादर शाही अतिथिशाला में ठहराया और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे कौत्स जैसे वेदपाठी को निराश नहीं करेंगे। चूंकि आवश्यक धनराशि को प्राप्त करने के लिए राजा के पास कोई साधन नहीं था, उन्होंने धनपति कुबेर देवता पर आक्रमण करने का निश्चय किया। इस अभियान के लिए अगले दिन प्रातः का समय नियत किया गया किन्तु सेनाओं के प्रस्थान करने से पूर्व ही कोषाध्यक्ष ने महाराज रघु को सूचना दी कि उनके कोषागार में रात भर स्वर्ण की वर्षा हुई है। रघु ने कौत्स को बुला भेजा और सारा स्वर्ण उनके आगे रख दिया। किन्तु

नहीं दिया। किन्तु राजकुमार अज के पास पहुंचते ही वह रुक-सी गई। चतुर परिचारिका को राजकुमारी का मन भांपने में देर नहीं लगी। उस ने अज के अलौकिक गुणों, अद्भुत शक्ति तथा वीरता का विस्तार से वर्णन किया। इन्दुमति अज की उपलब्धियों से बहुत प्रभावित हुई तथा अज के अनन्य रूप ने राजकुमारी का मन मोह लिया। इन्दुमति ने अज को पति बनाने का निश्चय कर लिया। उसने सुनन्दा के हाथों से वरमाला ली और अज के गले में डाल दी। जब विदर्भ के लोगों ने यह सुखद समाचार सुना तो उन्होंने एकमत से यह राय प्रकट की कि विधाता ने उन्हें वास्तव में एक-दूसरे के लिए बनाया था।

इन्दुमति का अज से विवाह बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। इन्दुमति के पिता, राजा भोज ने स्वयंवर में भाग लेने के लिए आए हुए अन्य राजाओं एवं राजकुमारों का यथोचित आदर किया और उन्हें सम्मानपूर्वक विदाई दी। यद्यपि शिष्टाचार के नाते उन्होंने उस अवसर पर कुछ नहीं कहा, किन्तु उनके मन में अज के प्रति ईर्ष्या की अग्नि जल रही थी, क्योंकि इन्दुमति ने, उनकी उपेक्षा करते हुए उसे चुना था। अतः जब अज तथा इन्दुमति दल-बल सहित अयोध्या को लौट रहे थे, उन्होंने उन पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। अज अकेले ही उन सबके लिए भारी सिद्ध हुए और उन्हें मुंह की खानी पड़ी। अज विजय की पताका फहराते हुए अयोध्या में प्रविष्ट हुए। महाराज रघु को उसके विवाह एवं युद्ध में जीत का समाचार पहले ही मिल चुका था। उन्होंने वीर पुत्र एवं सुमुखी पुत्रवधु का स्नेहपूर्वक स्वागत किया।

उसके बाद शीघ्र ही, रघु ने राज-सत्ता को त्याग, तपस्या का मार्ग अपनाने का निश्चय कर लिया। राजकुमार ने पिता से प्रार्थना की कि वे उसे छोड़ कर न जायें। रघु के मन में पुत्र के प्रति अगाध स्नेह था। वे वनों में न जाने पर राजी हो गए किन्तु वे राज्य-भार से

की आवाज़ सुनी। उन्होंने समझा कि कोई हाथी नदी से जल पी रहा है। आव देखा न ताव, दशरथ ने उस दिशा में शब्द-वेधी वाण छोड़ दिया। दुर्भाग्य से वह हाथी न था, बल्कि एक ब्राह्मण युवक, श्रवण कुमार था जो अपने अन्धे माता-पिता को कांवर में बिठला कर तीर्थ-यात्रा के लिए निकला था तथा उनकी प्यास बुझाने के लिए घड़े में जल भर रहा था। तीर श्रवण कुमार के कलेजे में लगा और वह वहीं ढेर हो गया। राजा के पश्चाताप का पारावार न था। युवक के वृद्ध नेत्र-हीन माता-पिता इस तीव्र आघात को सहन न कर सके और चल वसे। मरने से पहले उन्होंने राजा दशरथ को शाप दिया कि उसकी मृत्यु भी वृद्धावस्था में पुत्र-वियोग के कारण होगी।

शोकाकुल तथा पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए महाराज दशरथ अयोध्या को लौट आए।

दशरथ ने वहुत लम्बे समय तक राज किया। प्रजा की सुख-शान्ति के लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहते तथा जन-कल्याण के लिए उन्होंने वहुत से कार्य किए। अतः लोग उनसे वहुत प्रसन्न थे। किन्तु उनके मन में शान्ति न थी। वे प्रौढ़ावस्था को पार कर चुके थे किन्तु अपने पितामह दिलीप की तरह, वे भी पुत्र के सुख से वंचित थे। शृंगी ऋषि के कहने पर उन्होंने पुत्रेष्ठि-यज्ञ किया। यथासमय उनके यहाँ चार पुत्र हुए। सवसे वड़ी रानी कौशल्या ने राम को, सुमित्रा ने लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को तथा कैकेयी ने भरत को जन्म दिया। चारों पुत्र प्रियदर्शी थे। उनमें एक दूसरे के लिए अगाध स्नेह और पिता के प्रति असीम श्रद्धा थी। समय पा कर वे यौवन को प्राप्त हुए। अल्प आयु में ही उन्होंने संपूर्ण ज्ञान के मूल तत्वों को ग्रहण कर लिया तथा युद्ध-कला में प्रवीण हो गये।

एक वार महर्षि विश्वामित्र, महाराज दशरथ के दरवार में आए और यज्ञ की सुरक्षा के लिए राम तथा लक्ष्मण को अपने साथ ले

जाने के लिए अनुमति मांगी। राजा ने उनके सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब वे विश्वामित्र के आश्रम की ओर जा रहे थे तो राक्षसी ताड़का ने सहसा उन पर आक्रमण कर दिया। राम ने उसके वार को निष्फल कर दिया और एक बाण से उसे मार डाला। विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर राम को एक ऐसा दिव्य अस्त्र प्रदान किया जिससे वे किसी भी शक्तिशाली राक्षस का संहार कर सकते थे। तत्पश्चात् यज्ञों की राक्षसों के उपद्रवों से रक्षा करते हुए दोनों भाइयों ने सुबाहु को मार गिराया जब कि एक अन्य राक्षस मारीच भाग गया। इस प्रकार विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

इसके बाद विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों को मिथिला ले जाने का निश्चय किया जहां वे शंकर के विशाल धनुष को देख सकते थे। मिथिला, राजा जनक की राजधानी थी तथा शिवजी ने यह धनुष उनके किसी पूर्वज को दिया था। राजा जनक ने प्रण किया था कि वे अपनी बेटी सीता का विवाह उस वीर पुरुष से करेंगे जो शंकर के उस विराट धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने में सफल होगा। राजा ने महर्षि विश्वामित्र का आदरपूर्वक स्वागत किया। उन्हें उन दो राजकुमारों के सम्बन्ध में जानकर बहुत प्रसन्नता हुई जिन्हें विश्वामित्र अपने साथ लाए थे। महर्षि ने इच्छा व्यक्त की कि शिव के महान् धनुष को लाकर राम को दिखाया जाये। राजा जनक विश्वामित्र के दिल की बात समझ गए और दिल ही दिल में कहने लगे, भला राम जैसा सुकुमार युवक उस कार्य को कैसे सम्पन्न कर पाएगा जिसे देश के बड़े से बड़े योद्धा करने में असफल रहे हैं। किन्तु ऋषि की इच्छा का मान रखते हुए उन्होंने ने शिव के चाप को राम के सम्मुख प्रस्तुत करने का आदेश दिया। आठ पहियों के रथ में रख कर कई लोग अपनी पूरी शक्ति लगा कर उस भीमकाय धनुष को वहां ले आए। राम आगे बढ़े। उन्होंने ने एक ही हाथ से उस विराट धनुष को उठाया, दबाया और प्रत्यंचा चढ़ा दी। इस प्रकार

प्रिय पुत्र के वियोग को सहन न कर सके और स्वर्ग सिधार गए।

भरत उस समय अपने ननिहाल गये हुए थे। जब वे लौटे तो मां के आचरण से अत्यंत दुःखी हुए। उनके मन में राजगद्दी के लिए तनिक भी मोह नहीं था। ज्येष्ठ भ्राता राम को लौटा लाने के लिए वे वन चले गये। राम को वापस लाने में तो वे सफल नहीं हुए, किन्तु उनकी पादुका को अपने साथ ले आये। उन्होंने बड़े आदर के साथ उन खड़ाऊं को राजसिंहासन पर रखा, और राम का प्रतिनिधि बन कर राजकार्य चलाने लगे।

जब राम पंचवटी नामक स्थान पर निवास कर रहे थे तो लंका के राजा की छोटी बहन शूर्पणखा ने उनके रूप और तेज की चर्चा सुनी। वह वहां जा पहुंची और उनसे विवाह का प्रस्ताव किया। दोनों में काफी नोक-झोक हुई और इसी गर्मा-गर्मी में लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक-कान काट दिए। वह रोती-पीटती अपने भाइयों खर और दूषण के पास पहुंची। उन दोनों ने तुरन्त राम पर आक्रमण किया किन्तु अपने सैनिकों सहित मारे गए।

जब रावण ने अपनी बहन के अपमान तथा सगे-सम्बन्धियों के वध की बात सुनी तो वह क्रोध से तिलमिला उठा। उसने मामा मारीच को कपट-मृग बना कर राम के आश्रम पर भेजा और धोखे से सीता का हरण कर लिया और उन्हें अपने साथ लंका ले गया। सीता के हरण हो जाने से दोनों भाई, राम और लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुए और उनकी खोज में वन-वन भटकने लगे।

बाली तथा सुग्रीव दो भाई थे। उनकी आपस में नहीं बनती थी। बाली बड़ा दुष्ट था। उसने सुग्रीव को देश से निर्वासित कर, उसकी पत्नी को छीन लिया था। सीता को खोजते हुए राम वानरों के राजा सुग्रीव से मिले। उसे विपद्ग्रस्त देख राम ने उसका साथ दिया। युद्ध में बाली को मारकर उन्होंने सुग्रीव को पुनः राज सिंहासन पर स्थापित किया। बदले में वानरों के राजा ने सीता को खोजने में राम

उन्होंने जनक की पुत्री के विवाह के लिए जो शर्त रखी गई थी, उसे पूरा कर दिया।

राजा जनक आनन्द विभोर हो गए! राजा दशरथ को यह सुखद समाचार देने और उन्हें निमन्त्रित करने के लिए जनक ने तुरन्त एक पुरोहित को अयोध्या भेज दिया। दशरथ यह समाचार पाते ही, भरत और शत्रुघ्न के साथ, मिथिला की राजधानी जनकपुरी की ओर चल पड़े। राम और सीता का विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ। उसके साथ ही जनक की दूसरी बेटी उर्मिला की शादी लक्ष्मण से कर दी गई। राम के छोटे भाई, भरत और शत्रुघ्न जनक के छोटे भाई कुशध्वज की पुत्रियों, माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति से ब्याहे गए।

पाणिग्रहण संस्कार के बाद, अयोध्या को लौटते समय राम की भेंट परशुराम से हो गई। वे राम से क्रुद्ध थे क्योंकि उन्होंने भगवान् शंकर का धनुष तोड़ डाला था। किन्तु जब परशुराम को इस बात का विश्वास हो गया कि राम वास्तव में अनुपम शौर्य एवं शक्ति के स्वामी हैं तो वे उन्हें आशीर्वाद देकर अपने रास्ते पर चले गए।

जब दशरथ वृद्धावस्था को प्राप्त हुए, उन्होंने अपने राज्य का कार्यभार अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को सौंप देने का निश्चय किया, किन्तु सबसे छोटी रानी कैकेयी ने उनके मन्तव्य पर पानी फेर दिया। उसकी जिद थी कि राजसिंहासन पर उसके पुत्र भरत को बिठाया जाये और राम को चौदह वर्ष का वनवास दे दिया जाये। कैकेयी ने एक बार रणक्षेत्र में दशरथ की प्राण-रक्षा की थी। बदले में राजा ने रानी को दो वर दिये थे जिन्हें वह अपनी सुविधानुसार मांग सकती थी। अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए कैकेयी ने इस अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया। रानी के दुराग्रह से राजा के हृदय को तीव्र आघात लगा किन्तु राम ने यह सोच कर कि पिता अपने वचनों से झूठे न पड़ जाएं, कैकेयी की इच्छा को उनका आदेश समझ और भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता को साथ ले कर, वनों को चले गए। राजा दशरथ

प्रिय पुत्र के वियोग को सहन न कर सके और स्वर्ग सिधार गए।

भरत उस समय अपने ननिहाल गये हुए थे। जब वे लौटे तो मां के आचरण से अत्यंत दुःखी हुए। उनके मन में राजगद्दी के लिए तनिक भी मोह नहीं था। ज्येष्ठ भ्राता राम को लौटा लाने के लिए वे वन चले गये। राम को वापस लाने में तो वे सफल नहीं हुए, किन्तु उनकी पादुका को अपने साथ ले आये। उन्होंने बड़े आदर के साथ उन खड़ाऊं को राजसिंहासन पर रखा, और राम का प्रतिनिधि बन कर राजकार्य चलाने लगे।

जब राम पंचवटी नामक स्थान पर निवास कर रहे थे तो लंका के राजा की छोटी बहन शूर्पणखा ने उनके रूप और तेज की चर्चा सुनी। वह वहां जा पहुंची और उनसे विवाह का प्रस्ताव किया। दोनों में काफी नोक-झोंक हुई और इसी गर्मा-गर्मी मे लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक-कान काट दिए। वह रोती-पीटती अपने भाइयों खर और दूषण के पास पहुंची। उन दोनों ने तुरन्त राम पर आक्रमण किया किन्तु अपने सैनिकों सहित मारे गए।

जब रावण ने अपनी बहन के अपमान तथा सगे-सम्बन्धियों के वध की बात सुनी तो वह क्रोध से तिलमिला उठा। उसने मामा मारीच को कपट-मृग बना कर राम के आश्रम पर भेजा और धोखे से सीता का हरण कर लिया और उन्हें अपने साथ लंका ले गया। सीता के हरण हो जाने से दोनों भाई, राम और लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुए और उनकी खोज में वन-वन भटकने लगे।

बाली तथा सुग्रीव दो भाई थे। उनकी आपस में नहीं बनती थी। बाली बड़ा दुष्ट था। उसने सुग्रीव को देश से निर्वासित कर, उनकी पत्नी को छीन लिया था। सीता को खोजते हुए राम वानरों के राजा सुग्रीव से मिले। उसे विपद्ग्रस्त देख राम ने उनका साथ दिया। युद्ध में बाली को मारकर उन्होंने सुग्रीव को पुनः राज सिंहासन पर स्थापित किया। बदले में वानरों के राजा ने सीता को खोजने में राम

की यथासम्भव सहायता की। जब यह पता चल गया कि राक्षस रावण ने सीता को लंका की अशोक वाटिका में बन्दी बना कर रखा है, तो सुग्रीव ने अपने वीर नायक हनुमान् को उनका कुशल-समाचार पाने और ढाढ़स बंधाने के लिए लंका भेजा। हनुमान् समुद्र को पारकर, सीता के पास पहुंचे और उनसे यथेष्ट जानकारी प्राप्त कर राम के पास लौट आए। राम ने वानरों की सहायता से तुरन्त रावण पर आक्रमण करने का निश्चय किया। जब वे समुद्र तट पर पहुँचे तो रावण का भाई विभीषण उनसे आ मिला। वानरों ने समुद्र पर पुल बनाया और राम की सेना ने शीघ्र ही लंका के राज्य को घेर लिया। युद्ध में रावण के सभी सम्बन्धी मारे गए और अन्त में वह भी राम के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुआ। लंका के राजपरिवार में से अब केवल विभीषण जीवित था। राम ने उसका राजतिलक कर, उसे लंका का राजा बना दिया। राम के वनवास के चौदह वर्ष पूरे हो चुके थे। वे लक्ष्मण और सीता के साथ अयोध्या लौट आए। हनुमान् तथा सुग्रीव भी उनके साथ आए।

अयोध्या में राम का राजतिलक बड़ी धूम-धाम से हुआ। तत्पश्चात् सुग्रीव तो अपने राज्य को लौट गए, हनुमान् राम की सेवा के लिए वहीं रह गए। राम ने प्रजा के प्रति अपने उत्तरदायित्व को बड़े ही प्रशंसनीय ढंग से निभाया। उनके सभी प्रशासनिक कार्यों में न्यायप्रियता एवं लोकहित की झलक मिलती थी।

इस प्रकार कई वर्ष बीत गए। सीता अब गर्भवती थी। उन्होंने एक दिन पवित्र नदी गंगा के दर्शन की इच्छा प्रकट की। उसी बीच राम के गुप्तचरों ने उन्हें सूचना दी कि राज्य में कुछ लोगों को इस बात पर आपत्ति है कि रावण की नगरी में इतनी देर तक रहने पर भी राजा राम ने सीता को अपना लिया है। राम इसे सुन कर अत्यन्त दुःखी हुए किन्तु उन्होंने प्रजा-रंजन का व्रत ले रखा था और वे अपने

राज्य में अपने आचरण के सम्बन्ध में किसी को भी शिकायत का मौका नहीं देना चाहते थे। उन्होंने अपना कर्त्तव्य तुरन्त निश्चित कर लिया। उन्हें मालूम था कि प्राण-प्रिया पत्नी का वियोग उनके लिए हृदय-विदारक होगा, फिर भी उन्होंने उसे अपने पास रखना उचित नहीं समझा। लक्ष्मण, सीता को गंगा-दर्शन के वहाने नदी के पार वन में ले गए। वे समझ नहीं पा रहे थे कि माँ के समान पूज्य भाभी को इतने वड़े दुर्भाग्य की वात कैसे कहें? आखिर दिल को कड़ा करके उन्होंने वड़े भाई के कठोर निर्णय को सुना दिया। सीता पर मानो वज्रपात हुआ। लक्ष्मण ने उन्हें आश्वस्त करने की वहुत चेष्टा की किन्तु सव व्यर्थ। जव वे वहां से जाने लगे तो सीता फूट-फूट कर रो रही थीं। उनके दारूण विलाप से सम्पूर्ण प्रकृति स्तव्ध हो उठी थी। संयोगवश महर्षि वाल्मीकि का आश्रम निकट ही था। सीता की हृदय-विदारक करुण पुकार सुन वे वहां आ पहुंचे और उसे सांत्वना दे कर अपने साथ आश्रम में ले गए।

उधर राम ने जब लक्ष्मण से सीता की दयनीय दशा का वर्णन सुना तो उनका हृदय मानसिक पीड़ा से रो उठा। उनकी आंखों से आंसुओं की अविरल धारा वहने लगी। किन्तु वे अपने निर्धारित पथ से विचलित नहीं हुए।

यथा समय सीता ने वाल्मीकि के आश्रम में दो जुड़वाँ वच्चों—लव और कुश—को जन्म दिया। वचपन से ही वे तेजस्वी तथा पराक्रमी थे। इसी वीच वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। लव और कुश ने शीघ्र ही उसके पाठ एवं गान का अभ्यास भी कर लिया।

अयोध्या में राम ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। इसमें पत्नी के स्थान पर उन्होंने सीता की सोने की मूर्ति को स्थापित किया। जव सीता ने राम के पुन: विवाह न करने की वात सुनी, तो उसके मन में निर्वासित किये जाने का जो दु:ख था, वह कुछ कम हो

प्रसिद्ध हुए। राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने कारुपथ का राज्य अपने पुत्रों अंगद और चन्द्रकेतु में बांट दिया।

काफ़ी समय बाद, एक दिन यमराज, मुनि का वेश धारण किए राम के पास आए और उनसे एकान्त में बात करनी चाही। उन्होंने यह शर्त भी रखी कि कोई अन्य व्यक्ति उनकी बातचीत में हस्तक्षेप नहीं करेगा और यदि किसी ने ऐसा किया तो राम उसका सदा के लिए त्याग कर देंगे।

लक्ष्मण द्वार पर पहरा देने के लिए खडे हो गये। ठीक उसी समय महर्षि दुर्वासा पधारे और राम से तुरन्त भेंट करने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया किन्तु क्रोधी ऋषि ने एक न मानी। जब वे शाप देने को तैयार हो गए तो लक्ष्मण विवश होकर राम को उनके आगमन की सूचना देने के लिए अन्दर चले गए। यमराज को दिए वचन के इस प्रकार भग होने पर, राम ने अपने सर्वाधिक प्रिय भाई लक्ष्मण को सदा के लिए त्याग दिया। लक्ष्मण के लिए यह आघात असह्य था। उन्होंने सरयू में जल-समाधि लेकर प्राण त्याग दिए। राम भी भाई के चिरन्तन वियोग को सहन न कर सके। उन्होंने कुशावती और श्रावती के प्रदेशों को अपने पुत्रों कुश तथा लव को सौंप दिया और स्वयं विमान में बैठ कर स्वर्ग को चले गए।

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—सभी के दो-दो पुत्र थे। उन सब को भिन्न-भिन्न प्रदेशों का राजा बना दिया गया था। चूँकि कुश उन सब में बड़े थे, अयोध्या की प्रजा ने उन्हें वहां पिता राम का स्थान ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। कुश अयोध्या-वासियों के स्नेहमय अनुरोध को ठुकरा न सके। कुश के अयोध्या का राज सम्भालने पर, उस विशाल नगरी का प्राचीन वैभव लौट आया। कुश ने एक सुन्दर राजकुमारी कुमुदवती से विवाह किया।

गया।

अश्वमेध यज्ञ में घोड़े को छोड़ने की रस्म महत्त्वपूर्ण होती है। राजा राम ने इस अवसर पर सभी ऋषि-मुनियों को आमन्त्रित किया। वाल्मीकि ने अपनी ओर से लव और कुश को भेजा। रामायण का गान करते हुए वे अयोध्या में प्रविष्ट हुए। उनके असाधारण रूप और वाक्-माधुर्य से राम बहुत प्रभावित हुए। कथा के अन्तिम भाग में जो करुण रस था, उसने सभी आमन्त्रित जनों को भाव-विह्वल कर दिया। राजा उन्हें दान देना चाहते थे किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। तत्पश्चात् राम स्वयं वाल्मीकि के आश्रम में गए और अपना सारा राज्य उन्हें भेंट करना चाहा। तब महर्षि ने उन्हें सम्पूर्ण कथा कह सुनाई तथा सीता को पुनः स्वीकार करने का परामर्श दिया। किन्तु राम ने कहा कि यदि सीता सार्वजनिक रूप से अपनी शुद्धि का प्रमाण दें तो वे उन्हें वापस बुला लेंगे।

सीता ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। भरी सभा में उन्होंने मां पृथ्वी से प्रार्थना की—''हे वसुन्धरे, यदि मैं ने मन, वचन और कर्म से पतिव्रत धर्म का पालन किया है तो मुझे अपनी गोद में शरण दे दो।'' सीता का इतना ही कहना था कि उन के पांव के नीचे से धरती फट गई और सीता उस में समा गई। यह देख कर राम देवी पृथ्वी पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। तब सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा वहां स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने राम को समझा-बुझा कर शांत किया। उनके कहने पर वे कुश और लव को साथ ले कर अयोध्या लौट आए।

अश्वमेध यज्ञ सफलता से सम्पन्न हो गया। अतिथि जन अपने घरों को लौट गए। भरत को सिन्धु देश का राजा बना दिया गया। उन्होंने उसमें से दो क्षेत्र अपने दो पुत्रों, तक्ष और पुष्कल को दे दिये। वे दो प्रदेश बाद में तक्षशिला और पुष्कलावती के नाम से

प्रसिद्ध हुए। राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने कारुपथ का राज्य अपने पुत्रों अंगद और चन्द्रकेतु में बांट दिया।

काफी समय बाद, एक दिन यमराज, मुनि का वेश धारण किए राम के पास आए और उनसे एकान्त मे बात करनी चाही। उन्होंने यह शर्त भी रखी कि कोई अन्य व्यक्ति उनकी बातचीन में हस्तक्षेप नहीं करेगा और यदि किसी ने ऐसा किया तो राम उसका सदा के लिए त्याग कर देंगे।

लक्ष्मण द्वार पर पहरा देने के लिए खड़े हो गये। ठीक उसी समय महर्षि दुर्वासा पधारे और राम से तुरन्त भेंट करने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया किन्तु क्रोधी ऋषि ने एक न मानी। जब वे शाप देने को तैयार हो गए तो लक्ष्मण विवश होकर राम को उनके आगमन की सूचना देने के लिए अन्दर चले गए। यमराज को दिए वचन के इस प्रकार भंग होने पर, राम ने अपने सर्वाधिक प्रिय भाई लक्ष्मण को सदा के लिए त्याग दिया। लक्ष्मण के लिए यह आघात असह्य था। उन्होंने सरयू में जल-समाधि लेकर प्राण त्याग दिए। राम भी भाई के चिरन्तन वियोग को सहन न कर सके। उन्होंने कुशावती और श्रावती के प्रदेशों को अपने पुत्रों कुश तथा लव को सौंप दिया और स्वयं विमान में बैठ कर स्वर्ग को चले गए।

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—सभी के दो-दो पुत्र थे। उन सब को भिन्न-भिन्न प्रदेशों का राजा बना दिया गया था। चूँकि कुश उन सब मे बड़े थे, अयोध्या की प्रजा ने उन्हें वहां पिता राम का स्थान ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। कुश अयोध्या-वासियों के स्नेहमय अनुरोध को ठुकरा न सके। कुश के अयोध्या का राज सम्भालने पर, उस विशाल नगरी का प्राचीन वैभव लौट आया। कुश ने एक सुन्दर राजकुमारी कुमुदवती से विवाह किया।

कुश के पुत्र का नाम अतिथि था। वे सूर्य की तरह प्रतापी और अपने पूर्वजों की भांति गुणी एवं पराक्रमी थे। राक्षसों के विरुद्ध युद्ध में देवराज इन्द्र की सहायता करते हुए, कुश ने अपने प्राणों की बलि दे दी। पति की मृत्यु का आघात कुमुदवती के लिए घातक सिद्ध हुआ। कुश के बाद उनके पुत्र अतिथि राज-गद्दी पर बैठे। उन्होंने बड़ी कुशलता से राज्य का संचालन किया। अपने पराक्रम के बल पर उन्होंने कई सीमान्त राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र वरुण, कुबेर आदि देवताओं की उनके राज्य पर विशेष कृपा-दृष्टि थी। उनके शासन काल में अकाल, बाढ़ तथा भुखमरी ने प्रजा को कभी पीड़ित नहीं किया।

अतिथि के उत्तराधिकारी राजाओं ने रघुवंश की महिमा को बनाए रखा। उनमें निषाद तथा नल के नाम विशेष रूप से विख्यात हैं। किन्तु अग्निवर्ण नाम के राजा ने वंश की मर्यादा को मिट्टी में मिला दिया। विलासिता के अतिरिक्त उसमें कई अन्य दुर्व्यसन थे जो उसके पतन का कारण बने। उस के देहावसान के साथ ही रघुवंश की गौरव-गाथा समाप्त हो गई।

2. कुमारसम्भव

कुमारसम्भव में 17 सर्ग हैं। यह शिव और पार्वती के प्रणय एवं विवाह की पौराणिक कथा पर आधारित है। कामदेव द्वारा, समाधि में लीन शिव को पार्वती से विवाह के लिए लुभाने का निष्फल प्रयास, महादेव के हाथों कामदेव का भयंकर विनाश, अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी होते हुए भी, पार्वती के शंकर को प्राप्त करने में असफल होने पर, तपस्या एवं साधना का मार्ग अपनाने का निश्चय, युवा तपस्वी के वेश में शंकर की पार्वती से भेंट, उनका विवाह तथा कुमार का जन्म—इस महाकाव्य की प्रमुख घटनाएं हैं।

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार ए. बी. कीथ के कथनानुसार, "कुमारसम्भव अपनी प्रचुर विविधता, भावों की संवेदनशीलता तथा कल्पना की विलक्षण उड़ान के कारण, आधुनिक रुचि के विशेष अनुकूल है।"

भारत के उत्तर में महान् हिमालय पर्वत विराजमान है। उसकी ऊंची-ऊंची शृंखलाएं आकाश से बातें करती प्रतीत होती हैं। अत्यन्त प्राचीन काल में, इन पर्वत श्रेणियों में कई आदिम जातियां निवास करती थीं। उनमें किन्नर तथा गन्धर्व विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। पर्वतों की गुफाएं उनके मधुर संगीत से सदा गूंजती रहती थीं।

इन मनोरम पहाड़ी दृश्यों के बीच, औषधिप्रस्थ नाम की सुन्दर नगरी स्थित थी। राजा हिमालय उस पर शासन करता था। उसकी सदाचारिणी पत्नी का नाम मेना था। उनके यहाँ एक सुन्दर बालिका का जन्म हुआ जिसका नाम पार्वती रखा गया। वह उमा के

नाम से भी प्रसिद्ध थी। उसके गौर वर्ण के कारण बहुत से लोग उसे गौरी भी कहते थे। यद्यपि महाराजा हिमालय का एक पुत्र भी था, किन्तु पार्वती से उन्हें विशेष स्नेह था। वह उनकी लाडली बेटी थी।

बचपन में पार्वती, अपनी सहेलियों के साथ गंगा नदी के तट पर खेलती थी। वह रेत में अक्सर घरौंदे बनाती और तोड़ती। ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते गए, उसका रूप नवोदित चन्द्रमा की तरह दिन-प्रति-दिन खिलता गया। समय आने पर उसका यौवन पूरी तरह निखर उठा। वह अब अनन्य सौन्दर्य की स्वामिनी थी। उसके प्रत्येक अंग में अनोखा आकर्षण था। उसका मुख पूर्णिमा के चांद की तरह था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, हरिणी के चंचल नयनों जैसी थीं। उसकी कमर पतली तथा उसकी दोनों गोल बाहें, शिरीष वृक्ष के कुसुमों की तरह कोमल थीं। उसका कण्ठ मोतियों की माला की तरह सुन्दर था। उसका मधुर स्वर कोयल के स्वर-माधुर्य को मात करता था और उसकी चाल, हंस की गति से कहीं अधिक आकर्षक थी। वह रचयिता की सचमुच एक अद्भुत रचना थी। उसका आकर्षण अद्वितीय था।

एक दिन देवर्षि नारद, महाराज हिमालय के पास आये। संयोगवश पार्वती भी उस समय वहीं उपस्थित थी। नारद ने उसे देखते ही भविष्यवाणी की कि, यह कन्या, पति के रूप में महादेव को प्राप्त करेगी। पिता हिमालय का हृदय खुशी से झूम उठा। यद्यपि पार्वती विवाह-योग्य आयु को प्राप्त हो चुकी थी, उन्होंने उसके लिए किसी अन्य वर को खोजने का विचार त्याग दिया। किन्तु उन्होंने यह उचित नहीं समझा कि वे स्वयं शंकर के पास जाकर अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव करें। वे चाहते थे कि भगवान् खुद उन से पार्वती की [illegible] के अलावा महादेव समीप के पर्वतीय वन में [illegible] को साहस नहीं

हुआ कि वे उनके पास जा कर, उन्हें पार्वती को पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिए कहें। अतः उन्होंने पुत्री को परामर्श दिया कि वह अपनी सखियों के साथ जाकर, समाधि में लीन शंकर की सेवा करे और भक्ति-भाव से उनका दिल जीतने का यत्न करे।

पार्वती ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया और सहेलियों सहित हिमालय की उस सुरम्य कुटिया में जा पहुंची जहां भगवान् शिव तपस्या-रत थे। जाते ही पार्वती, शिव की सेवा में लग गई। प्रतिदिन प्रातः वह पुष्प लाती, जगह को साफ़ करती और पूजा के लिए जल एवं कुश जुटाती। इससे महादेव की तपस्या में कुछ विघ्न तो पड़ा किन्तु अपने संयम पर पूर्ण विश्वास होने के कारण, उन्होंने पार्वती की सेवा पर आपत्ति नहीं की। इस प्रकार पार्वती, बहुत दिनों तक दत्त-चित्त हो कर शिव की सेवा करती रही।

उन्हीं दिनों, तारक नाम के एक राक्षस ने, ब्रह्मा से मिले वर की सहायता से, अभूतपूर्व शक्ति प्राप्त कर ली थी। उसने देवताओं तक को युद्ध में हरा दिया था और उन्हें निरंतर आतंकित करता रहता था। जब देवता उस भयंकर असुर के अत्याचारों से अत्यधिक त्रस्त हो उठे, तो वे अपने राजा इन्द्र की अगवानी में ब्रह्मा की शरण में पहुंचे। देवताओं को शोक-सन्तप्त देख, ब्रह्मा का हृदय करुणा से भर गया। किन्तु देवताओं की सहायता करने में वे असमर्थ थे। राक्षस तारक ने सैंकड़ों वर्षों तक घोर तपस्या की थी और उससे अर्जित तपोबल से समस्त संसार को भस्म कर देना चाहता था। असीम शक्ति से सम्पन्न उस भयानक असुर को शान्त करने तथा विश्व को सर्वनाश से बचाने के लिए ब्रह्मा ने स्वयं वर दिया था जिससे उसे युद्ध में हराना असम्भव-सा हो गया था। ब्रह्मा के वरदान के अनुसार, केवल महाप्रभु शंकर से उत्पन्न पुत्र ही दानव तारक को रण में पराजित कर सकता था।

उधर शंकर ने, प्रिय पत्नी सती के भौतिक देह के त्याग देने पर संन्यास ले लिया था और हिमालय पर्वत की ऊंचाई पर स्थित एक गुफा में जा कर समाधि-लीन हो गए थे। उन्हें विवाह-बन्धन में बंधने के लिए प्रेरित करना सहज नहीं था, किन्तु विश्व में सरल सौन्दर्य से सम्पन्न रूपवती के होते हुए, यह कार्य सर्वथा असम्भव भी नहीं था। वह अनिंद्य सुन्दरी हर प्रकार से शिव की पत्नी बनने के योग्य थी।

इन सभी बातों को विचार कर भगवान् ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—"इस स्थिति में केवल पार्वती ही आप के अन्धकारमय जीवन को पुनरालोकित करने का साधन बन सकती है। अतः आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे शिव, पार्वती से विवाह करना स्वीकार कर लें। शिव और पार्वती का पुत्र ही आप का सेनापति बनकर, तारक को हरा सकता है और इस प्रकार आपको उसके आतंक से मुक्ति मिल सकती है। ब्रह्मा के ये शब्द देवों के सन्तप्त हृदयों को अमृत की वर्षा के समान प्रतीत हुए। वे मन में आशा की एक नई किरण संजोए स्वर्ग को लौट गए।

शीघ्र ही देवराज इन्द्र ने प्रेम के देवता कामदेव को याद किया। उन्हें विश्वास था कि कामदेव ही शिव की समाधि को भंग कर, उन्हें पार्वती के साथ विवाह करने के लिए लुभा सकता है। इन्द्र के स्मरण करते ही कामदेव, पुष्पों से निर्मित धनुष को धारण किए आ उपस्थित हुआ। इन्द्र ने उसे आदर सहित अपने पास बिठाया और उससे प्रेमपूर्वक कहा कि वह महादेव को अपने पुष्प-बाण का लक्ष्य बनाये ताकि वे तपस्या को त्याग, पार्वती से प्रेम करने लगें तथा उनके विवाह-बन्धन से उत्पन्न पुत्र, देवताओं को दानव तारक के अत्याचारों से छुटकारा दिला सकें।

कार्य सचमुच दुस्साहस-पूर्ण था। कामदेव ने सोचा कि यदि वह शिव की तपस्या को भंग करने की चेष्टा करते पकड़ा गया तो निस्सन्देह उनकी क्रोधाग्नि से भस्म हो जायेगा। किन्तु कामदेव अपने स्वामी के आदेश को टाल न सका। वह इस दुस्साध्य कार्य को करने के लिये तैयार हो गया। प्राण-प्रिया पत्नी रति और घनिष्ट मित्र वसन्त को साथ लेकर वह हिमाच्छादित पर्वतों में स्थित, शंकर की तपोभूमि में जा पहुंचा। उस समय शरद् ऋतु पूरे यौवन पर थी। पृथ्वी पर बर्फ की मोटी तह जमी हुई थी। वृक्ष, फूलों और पत्तों से विहीन थे। भयंकर सर्दी से बचने के लिये पशु-पक्षी गुफ़ाओं एवं घोंसलों में दुबके पड़े थे। समस्त वन प्राण-हीन सा प्रतीत होता था। किन्तु वसन्त के प्रविष्ट होते ही तपोवन में बहार आ गई। सभी ओर नवजीवन का संचार हो गया। प्रकृति सुन्दरी पुनः श्रृंगार कर, सजी संवरी दीखने लगी। सभी प्राणियों के हृदय भाव-विभोर हो उठे। आश्रम में रहने वाले ऋषियों ने विचलित होते हृदय को कठिनाई से वश में किया।

महादेव उस समय, योग-मुद्रा में बैठे थे। मानसिक उत्तेजना को उन्होंने योग-शक्ति से शान्त कर रखा था। ऐसा प्रतीत होता था मानों तरंगों से रहित शान्त सागर हो अथवा पवन-रहित स्थान में दीप-शिखा। कामदेव ने पहले ही कुसुमित वृक्षों की ओट में स्थान ग्रहण कर लिया था। उसने जब देखा कि मादक वातावरण महादेव को तनिक भी प्रभावित नहीं कर सका तो उसे बहुत निराशा हुई। जो कार्य-भार उसे सौंपा गया था, उसकी सफलता पर उसे सन्देह होने लगा।

ठीक उसी समय, अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी, पार्वती, अपने देवता के चरणों में फूल चढ़ाने के लिए आगे बढ़ी। ज्यों ही वह प्रणाम के लिए झुकी उसके कानों से पल्लव और बिखरी अलकों से

अलौकिक सौन्दर्य अपने इष्टदेव को पाने में असफल रहा था। उसके नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा बहने लगी। शोक-सागर में डूबती, वह अपने पिता के पास लौट गई।

जब रति को होश आया, तो वह प्रिय पति के बिछोह की असह्य यंत्रणा से छटपटाने लगी। कभी वह धरती पर लोटती, कभी बिलख-बिलख कर रोती और कभी विलाप करने लगती। उसका हृदय शोक से फटा जा रहा था। उसे लगा कि पति के बिना उसके जीवन का न तो कोई अर्थ है, न उद्देश्य। अतः उसने प्राणों को त्यागने का निश्चय कर लिया। वह अग्नि में प्रवेश करने ही वाली थी कि आकाशवाणी हुई—"जिस दिन शिव का पार्वती से विवाह होगा, तुम्हें अपना पति वापस मिल जाएगा।" रति को इन शब्दों से सांत्वना मिली और उसने आत्म-हत्या करने का विचार छोड़ दिया। वह शिव और पार्वती के सम्भावित विवाह की कामना तथा पति से पुनर्मिलन की प्रतीक्षा करने लगी।

पार्वती निस्सन्देह प्रथम प्रयास में प्रियतम को पाने में सफल नहीं हुई किन्तु वह उन व्यक्तियों में से नहीं थी जो आसानी से हार मान लेते हैं। जब शारीरिक सौन्दर्य तथा यौवन के बल पर वह इष्टदेव को प्राप्त न कर सकी तो उसने महादेव को रिझाने के लिए, साधना एवं तपस्या का मार्ग अपनाने का निश्चय किया। पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर, वह हिमालय की एक दुर्गम कुटिया में रहने लगी। वहां उसने कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। वह बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों को त्याग, वृक्षों की छाल पहनने लगी तथा ज़मीन पर सोने लगी। वह दिन-रात भगवान् शिव की पूजा करती। शरद् ऋतु की भयंकर सर्दी को उसने बैठ कर काट दिया। वर्षा, हिम-पात तथा बर्फ़ानी तूफ़ानों को झेलती हुई पार्वती निरन्तर शिव के नाम की माला जपती। आरम्भ में उसने जंगली फलों पर गुज़ारा किया,

कुसुम गिर पड़े। उसे देखते ही कामदेव के मन में आशा की नई किरण फूट पड़ी। उसने महसूस किया कि महादेव के हृदय को प्रेम-बाण से बींधने का यही सबसे अच्छा अवसर है। कामदेव ने अपने धनुष को दृढ़ता से पकड़ा और उस पर अमोघ पुष्प-बाण रख दिया। जब शिव, पार्वती से कमल के पुष्पों का हार लेने के लिए थोड़ा-सा झुके, तो कामदेव ने धनुष की डोरी को खींचा। महादेव का मन क्षण-भर के लिए इस तरह विचलित हो उठा मानो समुद्र में ज्वार आ गया हो। उन्होंने पहली बार पार्वती के चन्द्र-ज्योत्सना के समान उज्ज्वल मुख की ओर देखा और उसके दिव्य सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठे। पार्वती भी प्रसन्नता से झूम उठी। लज्जा की लालिमा ने उसके मुख को और भी अधिक आकर्षक बना दिया। किन्तु स्वभाव से संयमी होने के कारण, शिव शीघ्र ही सम्भल गये। अपनी चंचलता का कारण जानने के लिए, जब उन्होंने आंख उठा कर ऊपर देखा तो सामने धनुष की डोरी खींचे कामदेव दिखाई दिया। शिव की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उनके मस्तक का तीसरा नेत्र खुला और उससे धधकती ज्वाला निकल पड़ी। स्वर्ग में देवताओं ने जब अपने साथी कामदेव को इस प्रकार विपद्ग्रस्त देखा तो वे एक साथ चिल्ला उठे—"रोकिए, रोकिए अपने क्रोध को, प्रभो!" किन्तु उनके चीत्कार के शिवजी के कानों तक पहुंचने से पहले ही, उस अग्नि ने कामदेव को भस्म कर दिया। कामदेव की पत्नी रति के लिए यह घोर आपत्ति इतनी आकस्मिक थी कि वह उसे सहन न कर सकी और मूर्च्छित हो कटे हुए वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ी।

इस दुर्घटना के तुरन्त वाद, महादेव उस स्थान को छोड़ कर कहीं और चले गए ताकि उनकी समाधि में फिर किसी प्रकार का विघ्न न पड़े। पार्वती भी इस तीव्र आघात से आहत हो उठी। शोक एवं लज्जा से उसका कोमल हृदय टूट-सा गया। उसका अपूर्व एवं

अलौकिक सौन्दर्य अपने इष्टदेव को पाने में असफल रहा था। उसके नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा बहने लगी। शोक-सागर में डूबती, वह अपने पिता के पास लौट गई।

जब रति को होश आया, तो वह प्रिय पति के बिछोह की असह्य यंत्रणा से छटपटाने लगी। कभी वह धरती पर लोटती, कभी बिलख-बिलख कर रोती और कभी विलाप करने लगती। उसका हृदय शोक से फटा जा रहा था। उसे लगा कि पति के बिना उसके जीवन का न तो कोई अर्थ है, न उद्देश्य। अतः उसने प्राणों को त्यागने का निश्चय कर लिया। वह अग्नि में प्रवेश करने ही वाली थी कि आकाशवाणी हुई—"जिस दिन शिव का पार्वती से विवाह होगा, तुम्हें अपना पति वापस मिल जाएगा।" रति को इन शब्दों से सांत्वना मिली और उसने आत्म-हत्या करने का विचार छोड़ दिया। वह शिव और पार्वती के सम्भावित विवाह की कामना तथा पति से पुर्नमिलन की प्रतीक्षा करने लगी।

पार्वती निस्सन्देह प्रथम प्रयास में प्रियतम को पाने में सफल नहीं हुई किन्तु वह उन व्यक्तियों में से नहीं थी जो आसानी से हार मान लेते हैं। जब शारीरिक सौन्दर्य तथा यौवन के बल पर वह इष्टदेव को प्राप्त न कर सकी तो उसने महादेव को रिझाने के लिए, साधना एवं तपस्या का मार्ग अपनाने का निश्चय किया। पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर, वह हिमालय की एक दुर्गम कुटिया में रहने लगी। वहां उसने कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। वह बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों को त्याग, वृक्षों की छाल पहनने लगी तथा ज़मीन पर सोने लगी। वह दिन-रात भगवान् शिव की पूजा करती। शरद् ऋतु की भयंकर सर्दी को उसने बैठ कर काट दिया। वर्षा, हिम-पात तथा बर्फ़ानी तूफ़ानों को झेलती हुई पार्वती निरन्तर शिव के नाम की माला जपती। आरम्भ में उसने जंगली फलों पर गुज़ारा किया,

फिर ओस-बिन्दुओं और वृक्षों के पत्तों पर और अन्त में उसने उन्हें भी त्याग दिया।

एक दिन एक सुन्दर युवा तपस्वी, पार्वती के आश्रम में आया। उस ने मृग-छाला पहन रखी थी और सिर पर जूड़ा बनाया हुआ था। सामान्य कुशल समाचार के बाद, उसने पार्वती की घोर तपस्या का कारण जानना चाहा। जब पार्वती ने बताया कि शंकर के हृदय को जीतने के लिए यह सब कर रही है, तो उसका मज़ाक उड़ाते हुए युवा तपस्वी बोला—"तुम अजीब औरत हो। उस शिव को प्यार करती हो जो शरीर में भस्म रमाता है, श्मशान-भूमि में रहता है, हाथी की खाल पहनता है तथा कण्ठ में सांपों का हार डाले हुए है। क्या तुम नहीं जानती कि वह बैल की सवारी करता है। कहां तुम्हारा दिव्य रूप और कहां मस्तक में तीसरा नेत्र लगाए उसकी भौण्डी सूरत!"

जब पार्वती ने तपस्वी के मुख से शिव की निन्दा सुनी तो वह आपे से बाहर हो गई। भृकुटि तानकर क्रोध से बोली, "तुम वास्तविक महादेव को नहीं जानते, इसीलिए अनाप-शनाप बक रहे हो। किन्तु तुम जो कुछ कह रहे हो, वह यदि सच भी हो, तो भी मैं और अधिक सुनने के लिए तैयार नहीं हूं, क्योंकि मैं उस महाप्रभु को हृदय समर्पित कर चुकी हू।"

इतना कहकर, पार्वती ने तपस्वी को वहां से चले जाने की धमकी दी। तभी एक चमत्कार घटा। युवा तपस्वी तत्काल लुप्त हो गया और उसके स्थान पर पार्वती के सम्मुख मुस्कराते हुए भगवान् शंकर आ खड़े हुए। वे उसका हाथ पकड़ कर बोले—"हे सुमुखि! तपस्वी के वेश में मैं केवल तुम्हारी श्रद्धा की परीक्षा लेने आया था। तुमने घोर तपस्या,साधना,एवं आस्था से मेरा हृदय जीत लिया है।"

जब पार्वती ने इन मधुर शब्दों को सुना तो उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसे लगा, मानो वर्षों की घोर तपस्या की थकावट पल भर में दूर हो गई हो। इस अप्रत्याशित घटना ने वह कुछ गड़बड़ा-सी गई और समझ नहीं पाई कि क्या कहे। जब पार्वती संभली तो उसने अपनी एक सहचरी से शिव को यह सूचित करने के लिए कहा कि वे विवाह के प्रस्ताव को उसके पिता महाराजा हिमालय के आगे प्रस्तुत करें। पार्वती का यह सुझाव तत्कालीन भारतीय परम्परा के अनुकूल था, अतः शिव ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

अपने आश्रम में लौट कर, महादेव ने सप्तर्षियों को स्मरण किया। उन्हें याद करते ही वे सातों ऋषि उनके सम्मुख आ उपस्थित हुए। महादेव ने उन्हें कहा—"आप मेरी ओर से औषधिप्रस्थ के राजा हिमालय के पास जाएं और उनसे निवेदन करें कि मैं उनकी पुत्री पार्वती का पाणि-ग्रहण करना चाहता हूं। वे इसके लिए अपनी स्वीकृति प्रदान करें।"

सप्तर्षियों ने इस महत्त्वपूर्ण दायित्व को अपने लिए बहुत बड़ा गौरव समझा और तुरन्त औषधिप्रस्थ पहुंचे। महाराज हिमालय ने यथोचित सम्मान सहित उन की आव-भगत की। जब ऋषियों ने उन्हें भगवान् शिव का सन्देश सुनाया तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। वे तो इसी शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में आंखें बिछाए बैठे थे। अपनी महारानी मेना की औपचारिक सम्मति लेकर उन्होंने शंकर को जामाता बनाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। विवाह के लिए शुभ समय पूछे जाने पर ऋषियों ने बताया कि आज से तीन दिन बाद का लग्न ठीक रहेगा। तत्पश्चात् शिव को यह शुभ समाचार देने के लिए वे ऋषि उनके आश्रम की ओर चले गये।

चूंकि विवाह के लिए बहुत कम समय था, राजा हिमालय ने उस

के लिए तुरन्त तैयारियां आरम्भ कर दीं। सभी सम्बन्धी एवं बन्धु बान्धव आवश्यक सहायता देने के लिए उसके महल में इकट्ठे हो गए। नगर के सभी मुख्य मार्गों पर पुष्प बिछा दिए गए। विशिष्ट अतिथियों के स्वागत के लिए निर्मित तोरणों को फूल-पत्तियों से सजाया गया जिससे नगर की शोभा को चार चांद लग गए। विवाह के दिन, पार्वती ने दुलहिन के वस्त्रों को धारण किया। तब उसकी सखियां उसका शृंगार करने के लिए ले गईं। उन्होंने उसके केशों को सुगन्धित धुएं से सुखा कर संवारा और उन्हें पुष्पों की माला से बांध दिया। पार्वती की आंखों में काजल और पांवों में अलता लगाया गया। फिर उसे बहुमूल्य आभूषण पहनाए गए। नई दुलहिन के वस्त्रों से सुसज्जित तथा आभूषणों से विभूषित पार्वती ऐसे लगती थी मानो नवविकसित पुष्पों से अलंकृत लता हो।

कैलाश पर्वत पर दुलहिन को विशेष रूप से सजने-संवरने की आवश्यकता नहीं थी। महादेव ने स्वेच्छा से ही अपने आप को नए रूप में ढाल लिया। उनके शरीर पर भस्म, सुगन्धित लेप बन गई। उनके माथे का नेत्र मंगलमय तिलक की तरह चमकने लगा तथा उनके मुकुट पर विराजमान चन्द्रमा ने चूड़ामणि का रूप धारण कर लिया। उन्होंने जो हाथी की खाल पहन रखी थी, वह सुन्दर शाल में बदल गई।

जब बारात औषधिप्रस्थ की ओर चलने के लिए तैयार थी, तो ब्रह्मा और विष्णु महादेव का अभिनन्दन करने के लिए आ पहुंचे। महादेव ने झुक कर उनके अभिवादन को स्वीकार किया। देवराज इन्द्र तथा अन्य देवता भी शिव के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा व्यक्त करने के लिए वहां उपस्थित थे। शंकर ने तनिक मुस्करा कर उन का स्वागत किया। इस शुभ अवसर पर सप्तर्षि भी मौजूद थे। महादेव ने विवाह को शास्त्र-विधि के अनुसार सम्पन्न करने का

कार्य उन्हें सौंपा। जब बारात राजा हिमालय की राजधानी पहुंची, तो नगर के नर-नारी प्रतिष्ठित अतिथियों का स्वागत करने के लिए मौजूद थे। महादेव के मनोहर रूप ने नगर की युवतियों पर जादू-सा कर दिया। वे बहुत देर तक उन्हें मुग्ध हो कर देखती रहीं। एक ने तो यह भी कहा कि पार्वती ने जो घोर तपस्या तथा कठोर साधना की थी, वह शिव जैसे पति को पाने के लिए कुछ अधिक नहीं थी।

विवाह की रस्में विधिपूर्वक सम्पन्न की गईं। पुरोहितों द्वारा मन्त्रों के उच्चारण के साथ-साथ, शिव और पार्वती ने यज्ञ की अग्नि के तीन बार फेरे लिये। तदुपरान्त पुरोहितों ने उन्हें पति-पत्नी घोषित किया। ब्रह्मा ने पार्वती को वीर-जननी बनने का आशीर्वाद दिया। देवी सरस्वती ने भी नव-दम्पती के लिए आशीर्वचनों का उच्चारण किया। अप्सराओं ने उनके सम्मान में गान एवं नृत्य सहित नाटक प्रस्तुत किया। नाट्य-प्रदर्शन की समाप्ति पर, देवताओं ने महादेव के पास जाकर सविनय प्रार्थना की कि इस शुभ अवसर पर कामदेव को पुनर्जीवन का दान दे दिया जाए। अब महादेव के हृदय में लेशमात्र भी क्रोध नहीं रह गया था। वास्तव में वे अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने देवताओं की प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया। कामदेव तुरन्त अपने मौलिक भव्य रूप में प्रकट हो गए। शिव ने उसी प्रसन्न मुद्रा में कामदेव से हंसते हुए कहा कि वह अब उन पर जितने भी प्रेम-बाण चलाना चाहे चला ले।

शिव और पार्वती औषधिप्रस्थ में एक मास तक रहे। उसके बाद वे हिमालय के अन्य रमणीक स्थानों पर विहार करने के लिए चले गए। उन्होंने पर्वतों के सर्वोच्च शिखरों, सरोवरों, जलप्रपातों तथा अन्य आकर्षक जगहों का भ्रमण किया और सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त किया। इस प्रकार सौ वर्ष व्यतीत हो गए।

उधर राक्षस तारक के अत्याचारों के कारण, देवताओं को एक एक पल भारी पड़ रहा था। उनकी आशा के प्रतिकूल पार्वती ने अभी तक पुत्र को जन्म नहीं दिया था, यद्यपि शंकर के साथ उनके विवाह को काफी समय व्यतीत हो चुका था। जब देवताओं में तारक की क्रूरता को सहने की शक्ति नहीं रही, तो उन्होंने अग्नि देवता को दूत बना कर भेजने का निश्चय किया ताकि वह शिव के सम्मुख उनकी दयनीय दशा का वर्णन कर सके। अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया और उड़कर उनके निजी कक्ष में घुस गया। शिव को उसके मौलिक स्वरूप को जानने में देर नहीं लगी। इससे पहले कि वे उसे, अपने एकान्त स्थान में अनधिकृत प्रवेश के लिए दण्ड दें, अग्नि, हाथ जोड़ कर, बड़ी ही नम्रता से बोला—"प्रभो, मैं अपने राजा इन्द्र से आपके लिए एक संदेश लाया हूं। देवताओं ने विनय पूर्वक आपसे प्रार्थना की है कि आप एक पुत्र को पैदा करें जो तारक के विरुद्ध युद्ध में उनका नेतृत्व कर, उन्हें विजय दिला सके तथा दानव के बढ़ते हुए अत्याचारों से उनकी रक्षा कर सके।" शिव ने अग्नि को विश्वास दिलाया कि वे देवताओं की प्रार्थना पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे।

समय आने पर महादेव के यहां पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम कुमार कार्तिकेय रखा गया। सभी के लिए कुमार का जन्म एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। देवताओं ने फूलों की वर्षा से उसका स्वागत किया। कुमार कार्तिकेय स्रष्टा की अद्भुत रचना थी। वह विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न था। उसने छः दिनों के अल्प काल में न केवल पूर्ण यौवन को प्राप्त कर लिया, अपितु अपने माता-पिता की देख-रेख में, विद्या की भिन्न शाखाओं पर अधिकार तथा शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में पूर्ण कुशलता प्राप्त कर ली।

तब तारक की तानाशाही से त्रस्त देवता, राजा इन्द्र की अगवा

में, कुमार की सहायता प्राप्त करने के लिए, उसके पिता, शिव के निवास कैलाश पर्वत पर पहुंचे। द्वारपाल ने उन्हें अपने स्वामी के सम्मुख प्रस्तुत किया। जब महादेव ने उनके व्यथित चेहरों को देखा और उनके कष्ट की हृदय-विदारक कथाओं को सुना तो उन्हें उनकी दशा पर बहुत दया आई। उन्होंने तुरन्त पुत्र को बुला भेजा और उसे देवताओं के साथ जा कर, उनके शत्रु दैत्य तारक को युद्ध में मार गिराने का आदेश दिया।

देवताओं की बहुत बड़ी सेना, महाराज इन्द्र के महल के सामने वाले मैदान में एकत्रित हुई। सेनापति कुमार सब से आगे थे। वे रथ में बैठे थे। उनके एक हाथ में धनुष तथा दूसरे में 'शक्ति' नाम का अस्त्र था। उन के पीछे क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यमराज, कुबेर तथा वरुण थे। उनके बाद देवताओं का एक बड़ा दल था। उन्होंने नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र धारण कर रखे थे। ज्यों-ही सब ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया, कुमार ने कूच करने का आदेश दिया। सेना पताकाएं फहराती आगे बढ़ने लगी।

जब असुरों को मालूम हुआ कि महादेव का पुत्र कुमार, देवों की एक बड़ी सेना के साथ उनसे युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा आ रहा है, तो वे भयभीत हो उठे। अपने राजा तारक को इस बात की सूचना देने के लिए, वे तुरन्त उसके पास पहुंचे। राक्षस तारक क्रोध से आग-बबूला हो उठा। उसने तत्काल अपने सेनानायकों को युद्ध के लिए तैयारी की आज्ञा दे दी।

दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। समस्त रण-भूमि दोनों ओर के शवों से भर गई। जब तारक के घातक शस्त्र भी देवताओं का दमन करने में सफल नहीं हुए तो उसने महसूस किया कि उसके सभी प्रयासों को विफल करने का मुख्य कारण कुमार ही

है। अतः उसने सबसे पहले उससे युद्ध करने का निश्चय किया। उनके सम्मुख आकर तारक बोला– "हे तपस्वी महादेव के पुत्र, इन भयंकर युद्धों के लिए तुम्हारी आयु अभी बहुत छोटी है। तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो, तुम जाकर मां की गोद की शरण लो। तुम अपने प्राणों की बलि क्यों देना चाहते हो?"

जब कुमार ने इन व्यंगात्मक शब्दों को सुना, उनके नेत्र क्रोध से लाल हो उठे।उन्होंने उत्तर दिया–"हे दानव! वीर पुरुषों की शक्ति का प्रमाण उनके शब्दों से नहीं, बल्कि उनके बाहुबल से मिलता है। आज मैं तुम्हारी शक्ति की परीक्षा लेने आया हूं और तुम्हें युद्ध के लिए ललकारता हूं।"

अब दोनों योद्धा एक दूसरे के सामने खड़े थे। तारक ने तीरों की बौछार-सी कर दी किन्तु कुमार ने उन्हें अपने बाणों से काट दिया। तारक ने कुण्ठित होकर आग्नेय अस्त्र से प्रहार किया जिससे देवों की सेना में भयंकर आग लग गई तथा सारा आकाश काले घने धुंए से भर गया। उसके प्रतिकार में, कुमार ने वरुण अस्त्र से प्रहार किया जिस के फलस्वरूप बादलों के गरजने और बिजली के चमकने के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी और सभी जगह आग ठण्डी पड़ गई। जब तारक के सर्वाधिक प्रभावशाली शस्त्रों में से कोई भी कुमार को वश में न कर सका, तो वह अपने रथ से नीचे उतर आया और हाथ में तलवार लेकर कार्तिकेय की ओर लपका। तब कुमार ने अपने अविजेय अस्त्र 'शक्ति' से प्रहार किया जिससे दानव की छाती फट गई।

इस प्रकार शिव के प्रतिभा-सम्पन्न पुत्र कुमार ने भयंकर दैत्य तारक को मौत की नींद सुला दिया। इससे देवराज इन्द्र का साम्राज्य सर्वथा निष्कण्टक हो गया।

□□

3. अभिज्ञानशाकुन्तल

'अभिज्ञानशाकुन्तल' 7 अंकों का नाटक है। यह महाभारत में वर्णित शकुन्तला के उपाख्यान पर आधारित है। इसमें महाराज दुष्यन्त तथा मुनि-कन्या शकुन्तला की प्रणय-कथा का वर्णन है। परस्पर आकर्षण के फलस्वरूप वे आश्रम में ही गान्धर्व-विवाह कर लेते हैं। महर्षि दुर्वासा के शाप के प्रभाववश राजा दुष्यन्त उस विवाह की बात को सर्वथा भूल जाते हैं किन्तु नववधू को दी गई अपने ही नाम से अंकित मुद्रिका को देख कर उन्हें तपोवन की सभी घटनाएं याद हो आती हैं। अन्त में देवर्षियों तथा उपदेवताओं की तपोभूमि में, उनका पत्नी और पुत्र से मिलन होता है।

'अभिज्ञानशाकुन्तल' महाकवि कालिदास की नाट्य-कथा-कुशलता का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है। विश्व भर के समालोचकों ने इसे समस्त संस्कृत साहित्य का सर्वोत्तम नाटक माना है। प्रख्यात जर्मन कवि गेटे ने जब इस नाटक का अनुवाद पढ़ा तो अपने उद्गारों को कुछ इस प्रकार प्रकट किया था–

"यदि आप युवा बसन्त की कलियों और प्रौढ़ ग्रीष्म के परिपक्व फलों को एक साथ देखना चाहते हैं; अथवा उस पदार्थ का रसास्वादन करना चाहते है जिससे आत्मा सन्तृप्त, आनन्दित एवं मुग्ध हो उठती है; अथवा यदि आप लौकिक ऐश्वर्य और दिव्य सुषमा के अपूर्व सम्मिलन का अवलोकन करना चाहते हैं, तो एक बार 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का अनुशीलन कीजिए।"

शकुन्तला, महर्षि विश्वामित्र तथा मेनका नाम की अप्सरा की पुत्री थी। महर्षि ने उसे अपनाने से इन्कार कर दिया था क्योंकि उनकी मां ने उनकी तपस्या भंग करके उसे प्राप्त किया था। अप्सरा

का भी पुत्री के जन्म के बाद पृथ्वी पर रुकना असम्भव था। अतः वह उसे वन में अकेला छोड़, इन्द्रलोक को लौट गई।

कुलपति कण्व का आश्रम वहां से बहुत दूर नहीं था। जब उन्होंने परित्यक्त शिशु के सम्बन्ध में सुना तो वे तुरन्त वहां पहुंचे। अबोध बालिका को निस्सहाय अवस्था में देख, वे करुणार्द्र हो उठे और उसे उठा कर आश्रम में ले गए। यद्यपि वे तपस्वी थे, तो भी उन्होंने उसे पोष्य-पुत्री बना लिया। इस प्रकार शकुन्तला, आश्रम के रमणीय एवं निष्कपट वातावरण में, फूल-पौधों को सींचती, मृग-शावकों के साथ खेलती तथा नवविकसित कलियों के साथ मुस्कराती, बड़ी हो गई। समय पा कर वह युवा अवस्था को प्राप्त हुई, तो उसका अनिन्द्य रूप पूरी तरह निखर उठा।

उस समय पुरु वंश के राजा दुष्यंत देश पर राज करते थे। वे रूपवान और पराक्रमी थे। एक बार वे विनोदी मित्र विदूषक तथा सैनिकों के छोटे से दल को साथ ले शिकार के लिए निकले। रथ में एक मृग का पीछा करते हुए वे घने जंगलों के बीच कण्व के आश्रम में जा पहुंचे। मृग के दृष्टिगोचर होते ही, राजा ने धनुष की डोरी पर बाण रख दिया किन्तु उनके तीर छोड़ने से पहले ही कुलपति कण्व का एक शिष्य पुकार उठा—"महाराज! यह आश्रम का मृग है, इसे मत मारिये।"

राजा दुष्यन्त ने तुरन्त बाण को वापस तरकश में रख लिया और स्वयं रथ से नीचे उतर आए। शिष्य ने उन्हें कुलपति के आश्रम में पधारने और आतिथ्य स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित किया। राजा को यह भी सूचित किया कि महर्षि कण्व विशेष उद्देश्य से तीर्थ-यात्रा पर गए हुए हैं, किन्तु उनकी पुत्री शकुन्तला आश्रम में ही है और वह उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखेगी।

राजा ने निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। ऋषि-मुनियों के प्रति श्रद्धा के कारण, उन्होंने शाही आभूषणों तथा अन्य अलंकारों को उतार कर रख दिया। रथ को वहीं छोड़, वे आश्रम की ओर चल पड़े। वातावरण में अनूठी शान्ति और पवित्रता थी। जब दुष्यन्त आश्रम में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने तीन रूपवती कन्याओं को देखा जो पुष्प-पौधों को सींच रही थीं। उनमें एक शकुन्तला थी जो अत्यन्त रूपवती थी। उस अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी को देखते ही राजा उस पर मुग्ध हो गये। शकुन्तला भी उनके धीर, गम्भीर एवं सौम्य व्यक्तित्व से आकृष्ट हो उन पर अनुरक्त हो उठी।

शकुन्तला के साथ अन्य दो कन्याएं—अनसूया और प्रियवंदा—उसकी अंतरंग सखियां थीं। उनके मन में उसके लिए अत्यन्त स्नेह एवं श्रद्धा थी। उन्हीं से राजा को शकुन्तला के माता-पिता के सम्बन्ध में जानकारी मिली। किन्तु राजा ने अपना वास्तविक परिचय नहीं दिया। उन्होंने जाहिर तौर पर यह कहा कि वे एक राजपुरुष हैं तथा महाराज दुष्यन्त ने उन्हें तपोवन में यह जानने के लिए भेजा है कि तपस्वियों तथा ऋषियों से सम्पादित यज्ञों तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में कोई विघ्न तो नहीं डालता।

इसी बीच सूचना मिली कि एक हाथी हिंसोन्मत्त होकर तपोवन की ओर भागता चला आ रहा है। यह सुनकर कन्याएं भयभीत हो उठीं और हड़बड़ी में अतिथि से विदा ले कर जाने लगीं। किन्तु जाने से पहले शकुन्तला की सखियों ने उनसे प्रार्थना की कि वे पुनः पधारें क्योंकि इस बार वे उनका यथोचित आदर सत्कार नहीं कर पायीं। राजा भी अपने शिविर को लौट गए।

शकुन्तला को देखते ही दुष्यन्त के हृदय में जो प्रेम की अग्नि सुलगी थी, वह अब भड़क उठी थी। उस की जलन से उन्हें माग

का भी पुत्री के जन्म के बाद पृथ्वी पर रुकना असम्भव था। अतः वह उसे वन में अकेला छोड़, इन्द्रलोक को लौट गई।

कुलपति कण्व का आश्रम वहां से बहुत दूर नहीं था। जब उन्होंने परित्यक्त शिशु के सम्बन्ध में सुना तो वे तुरन्त वहां पहुंचे। अबोध बालिका को निस्सहाय अवस्था में देख, वे करुणार्द्र हो उठे और उसे उठा कर आश्रम में ले गए। यद्यपि वे तपस्वी थे, तो भी उन्होंने उसे पोष्य-पुत्री बना लिया। इस प्रकार शकुन्तला, आश्रम के रमणीय एवं निष्कपट वातावरण में, फूल-पौधों को सींचती मृग-शावकों के साथ खेलती तथा नवविकसित कलियों के साथ मुस्कराती, बड़ी हो गई। समय पा कर वह युवा अवस्था को प्राप्त हुई, तो उसका अनिन्द्य रूप पूरी तरह निखर उठा।

उस समय पुरु वंश के राजा दुष्यंत देश पर राज करते थे। रूपवान और पराक्रमी थे। एक बार वे विनोदी मित्र विदूषक तथा सैनिकों के छोटे से दल को साथ ले शिकार के लिए निकले। रथ एक मृग का पीछा करते हुए वे घने जंगलों के बीच कण्व के आश्र में जा पहुंचे। मृग के दृष्टिगोचर होते ही, राजा ने धनुष की डोरी बाण रख दिया किन्तु उनके तीर छोड़ने से पहले ही कुलपति क का एक शिष्य पुकार उठा—"महाराज! यह आश्रम का मृग है, मत मारिये।"

राजा दुष्यन्त ने तुरन्त बाण को वापस तरकश में रख लिया अ स्वयं रथ से नीचे उतर आए। शिष्य ने उन्हें कुलपति के आश्रम म पधारने और आतिथ्य स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित राजा को यह भी सूचित किया कि महर्षि कण्व विशेष तीर्थ-यात्रा पर गए हुए हैं, किन्तु उनकी पुत्री शकुन्तला आ ही है और वह उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखेगी।

शरीर झुलसता प्रतीत होता था। उन्होंने मन की बात अंतरंग मित्र विदूषक से कह कर, मन का बोझ कुछ हल्का करना चाहा। अतः उन्होंने उसे महर्षि कण्व की पोष्य-पुत्री शकुन्तला से प्रेम की बात कह सुनाई। उन्होंने उसे कोई ऐसी तरकीब सोचने के लिए भी कहा जिससे वे पुनः महर्षि के आश्रम में जा सकें। संयोग वश उसी समय आश्रम से दो ऋषिकुमार महाराज दुष्यन्त के पास आए और बोले कि महर्षि कण्व की अनुपस्थिति में राक्षस उनके धार्मिक अनुष्ठानों में विघ्न डाल रहे हैं। अतः आश्रमवासियों ने प्रार्थना की है कि आप तपोवन में कुछ दिन और रुक कर, यज्ञों को निर्विघ्न सम्पन्न करने में उनकी सहायता करें।

राजा ने उनकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। उन्होंने विदूषक को तुरन्त राजमहल वापस जाने के लिए कहा और साथ ही सैनिकों को आदेश दिया कि वे भी आखेट समाप्त कर, उसके साथ राजधानी हस्तिनापुर लौट जाएं। राजा के मन में शंका थी कि कहीं विदूषक महल में जाकर उनके प्रेम का रहस्य न खोल दे। उन्होंने बात बनाते हुए विदूषक से कहा, ''ऋषि कन्या से प्रेम की बात करते समय मैं तुमसे केवल मज़ाक कर रहा था। तुम उसे कहीं सच न समझ बैठना।''

दूसरी ओर, शकुन्तला भी विरह-व्यथा से आकुल थी। उसके सन्तप्त हृदय को कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी। उसकी सखियों—अनसूया और प्रियंवदा—को उसके मन का भेद जानने में देर नहीं लगी। उन्होंने उसे धैर्य बंधाने तथा सांत्वना देने के कई प्रयास किए, किन्तु सब व्यर्थ। उन्हें जब
अतिथि स्वयं महाराज दुष्यंत हैं तथा
प्यार करते हैं तो वे आश्वस्त हो गईं।
और दुष्यन्त को अकेला छोड़ दिया ताकि

से अवगत हो जाएं। दोनों को यह समझने में देर नहीं लगी कि वे एक दूसरे से अत्यधिक प्यार करते हैं। अत: राजा ने जब शकुन्तला से विवाह का प्रस्ताव किया तो उसने उसे स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया।

चूंकि राजा के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे राजधानी से बहुत अधिक समय तक अनुपस्थित रहें, उन्होंने शकुन्तला से गान्धर्व रीति के अनुसार विवाह कर लिया और हस्तिनापुर लौट गए। वे पत्नी को अपने साथ नहीं ले गए, क्योंकि उसके पिता, महर्षि कण्व, अभी तीर्थ-यात्रा से वापस नहीं आए थे। किन्तु लौटने से पहले राजा ने अपनी नामांकित अंगूठी शकुन्तला को दी और कहा कि उनके अंकित नाम में जितने अक्षर हैं, उतने दिनों में वे अपने दूत को भेज कर उसे हस्तिनापुर बुलवा लेंगे।

अपने पति के वियोग में शकुन्तला के दिन काटे नहीं कटते थे। वह दिन रात उन्हीं के ध्यान में खोई रहती। ऐसी अवस्था में एक दिन ऋषि दुर्वासा कण्व के आश्रम में पधारे। वे चिड़चिड़े स्वभाव तथा कटुवाणी के लिए प्रसिद्ध थे। जब वे शकुन्तला की कुटिया के सामने आए, तो सदा की तरह दुष्यन्त के विचारों में मग्न होने के कारण, उसने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। दुर्वासा ने इसे व्यक्तिगत अपमान समझा तथा कोपवश में शकुन्तला को शाप दिया– "अरी ओ अतिथि का अपमान करने वाली अभागिन! जिस प्रियतम की याद में तू इतनी मग्न है, वह स्मरण कराये जाने पर भी तुझे पहचान नहीं पाएगा।"

शकुन्तला को तो तन-बदन की सुध नहीं थी। न तो उसने इन शब्दों को सुना, न दुर्वासा को अपने द्वार से लौटते देखा। किन्तु उसकी सखी प्रियंवदा कहीं निकट ही खड़ी थी। जब उसने ऋषि के

से अवगत हो जाएं। दोनों को यह समझने में देर नहीं लगी कि वे एक दूसरे से अत्यधिक प्यार करते हैं। अतः राजा ने जब शकुन्तला से विवाह का प्रस्ताव किया तो उसने उसे स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया।

चूंकि राजा के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे राजधानी से बहुत अधिक समय तक अनुपस्थित रहें, उन्होंने शकुन्तला से गान्धर्व रीति के अनुसार विवाह कर लिया और हस्तिनापुर लौट गए। वे पत्नी को अपने साथ नहीं ले गए, क्योंकि उसके पिता, महर्षि कण्व, अभी तीर्थ-यात्रा से वापस नहीं आए थे। किन्तु लौटने से पहले राजा ने अपनी नामांकित अंगूठी शकुन्तला को दी और कहा कि उनके अंकित नाम में जितने अक्षर हैं, उतने दिनों में वे अपने दूत को भेज कर उसे हस्तिनापुर बुलवा लेंगे।

अपने पति के वियोग में शकुन्तला के दिन काटे नहीं कटते थे। वह दिन रात उन्हीं के ध्यान में खोई रहती। ऐसी अवस्था में एक दिन ऋषि दुर्वासा कण्व के आश्रम में पधारे। वे चिड़चिड़े स्वभाव तथा कटुवाणी के लिए प्रसिद्ध थे। जब वे शकुन्तला की कुटिया के सामने आए, तो सदा की तरह दुष्यन्त के विचारों में मग्न होने के कारण, उसने उनकी ओर ध्यान नही दिया। दुर्वासा ने इसे व्यक्तिगत अपमान समझा तथा कोपवश में शकुन्तला को शाप दिया— "अरी ओ अतिथि का अपमान करने वाली अभागिन! जिस प्रियतम की याद में तू इतनी मग्न है, वह स्मरण कराये जाने पर भी तुझे पहचान नहीं पाएगा।"

शकुन्तला को तो तन-बदन की सुध नहीं थी। न तो उसने इन शब्दों को सुना, न दुर्वासा को अपने द्वार से लौटते देखा। किन्तु उसकी सखी प्रियंवदा कहीं निकट ही खड़ी थी। जब उसने ऋषि के

शाप को सुना तो उसके पांव तले की धरती खिसक गई। अनसूया के कहने पर वह दौड़ कर दुर्वासा के पीछे गई और उनके चरणों में गिर कर शकुन्तला की ओर से क्षमा-याचना करने लगी। पहले तो ऋषि टस से मस नहीं हुए किन्तु प्रियंवदा के बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने इतनी छूट दी कि यदि शकुन्तला राजा दुष्यन्त को कोई पहचान का आभूषण दिखाएगी, तो उन्हें सारी बातें याद हो आएंगी। यह छूट सचमुच महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि दुष्यन्त ने जाने से पहले शकुन्तला को अपनी मुद्रिका दी थी और दोनों सखियों को विश्वास था कि यदि राजा ने, मुनि के शापवश, शकुन्तला को पहचानने से इन्कार कर दिया तो वह मुद्रिका दिखा कर, उन्हें सब कुछ स्मरण करा देगी। ये सोच कर प्रियंवदा तथा अनसूया आश्वस्त हो गईं। उन्होंने शाप की बात किसी को नहीं बताई, शकुन्तला तक को नहीं ताकि वह घबरा न जाये।

महर्षि कण्व तब तक आश्रम को लौट आए थे। उन्हें शकुन्तला तथा राजा दुष्यन्त के गान्धर्व रीति से विवाह करने की सूचना मिल गई थी। उन्होंने उस पर कोई आपत्ति नहीं की। राजा दुष्यन्त हर प्रकार से उनकी बेटी के योग्य थे। शकुन्तला के लिए उनसे अधिक उपयुक्त वर वे सम्भवतः कभी न खोज पाते। कुलपति को यह समाचार भी मिल गया कि शकुन्तला गर्भवती है।

उसी बीच दुर्वासा का शाप अपना असर दिखाने लगा। हस्तिनापुर में राजा दुष्यन्त तपोवन में अपनी वधु शकुन्तला के सम्बन्ध में सब कुछ भूल गए। उसे आश्रम से महल में लिवा लाने के लिए उन्होंने दूत भेजने का जो वचन दिया था, उसे वे पूरा नहीं कर पाये। कई मास बीत गए। अब शकुन्तला के गर्भ के लक्षण अधिक स्पष्ट हो गए थे। अतः कुलपति कण्व ने उसे दो तपस्वियों और एक तपस्विनी की देख-रेख में, [illegible] के पास भेजने का [illegible]नय किया।

पिता के आश्रम से शकुन्तला की विदाई सचमुच हृदय-विदारक थी। उस समय, मनुष्य तो एक ओर, पशु-पक्षी तथा मूक प्रकृति भी उसके सम्भावित वियोग की वेदना से व्यथित हो उठे। स्नेहमय पिता कण्व और प्राणों से भी प्रिय सखियों, प्रियंवदा और अनसूया, के हृदय में टीस और आंखों में आंसू थे। ऐसा प्रतीत होता था कि तपोवन के पशु एवं पक्षी और यहां तक कि पौधे भी उसके स्नेह-बन्धन में बंधे थे और उसकी विदाई पर दुःख प्रकट कर रहे थे। हरिणियों ने घास खाना छोड़ दिया था और मोरों का नाचना रुक गया था। लताओं से पीले पत्ते झड़ने लगे थे, मानो वे आंसू बहा रही हों।

ऋषि कण्व तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए बोले—

"जो शकुन्तला तुम्हें सींचे विना पानी न पीती थी, पुष्प-आभूषणों में अनन्य रुचि होने पर भी, जिसने तुम्हारे फूल और पत्ते तोड़ कर तुम्हें कभी दुःख नहीं दिया था। तुम्हारे खिलने के दिनों में जो सदा उत्सव मनाती थी, वही शकुन्तला आज पति-गृह को जा रही है, उसे आज्ञा दो।"

तभी एक वृक्ष से कोयल का मधुर स्वर कूक उठा, मानों वृक्षों ने शकुन्तला को पति-गृह जाने की अनुमति दे दी हो।

अभी शकुन्तला कुछ कदम ही आगे बढ़ी थी कि उसने चलने में कुछ रुकावट अनुभव की। पीछे मुड़ कर देखा तो एक मृग-शावक उसका आंचल खींच रहा था। यह वही पशु था जिसकी मां उसे जन्म देते ही चल वसी थी तथा शकुन्तला ने बड़े स्नेह से उसे पाल-पोस कर बड़ा किया था। उसके वियोग के भय से वह हरिण का बच्चा भी व्याकुल दीख पड़ता था।

शकुन्तला, प्रिय-जनों के साथ, बड़े उदास मन से, अपने गन्तव्य

शाप को सुना तो उसके पांव तले की धरती खिसक गई। अनसूया के कहने पर वह दौड़ कर दुर्वासा के पीछे गई और उनके चरणों में गिर कर शकुन्तला की ओर से क्षमा-याचना करने लगी। पहले तो ऋषि टस से मस नहीं हुए किन्तु प्रियंवदा के बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने इतनी छूट दी कि यदि शकुन्तला राजा दुष्यन्त को कोई पहचान का आभूषण दिखाएगी, तो उन्हें सारी बातें याद हो आएंगी। यह छूट सचमुच महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि दुष्यन्त ने जाने से पहले शकुन्तला को अपनी मुद्रिका दी थी और दोनों सखियों को विश्वास था कि यदि राजा ने, मुनि के शापवश, शकुन्तला को पहचानने से इन्कार कर दिया तो वह मुद्रिका दिखा कर, उन्हें सब कुछ स्मरण करा देगी। ये सोच कर प्रियंवदा तथा अनसूया आश्वस्त हो गईं। उन्होंने शाप की बात किसी को नहीं बताई, शकुन्तला तक को नहीं ताकि वह घबरा न जाये।

महर्षि कण्व तब तक आश्रम को लौट आए थे। उन्हें शकुन्तला तथा राजा दुष्यन्त के गान्धर्व रीति से विवाह करने की सूचना मिल गई थी। उन्होंने उस पर कोई आपत्ति नहीं की। राजा दुष्यन्त हर प्रकार से उनकी बेटी के योग्य थे। शकुन्तला के लिए उनसे अधिक उपयुक्त वर वे सम्भवतः कभी न खोज पाते। कुलपति को यह समाचार भी मिल गया कि शकुन्तला गर्भवती है।

उसी बीच दुर्वासा का शाप अपना असर दिखाने लगा। हस्तिनापुर में राजा दुष्यन्त तपोवन में अपनी वधू शकुन्तला के सम्बन्ध में सब कुछ भूल गए। उसे आश्रम से महल में लिवा लाने के लिए उन्होंने दूत भेजने का जो वचन दिया था, उसे वे पूरा नहीं कर पाये। कई मास बीत गए। अब शकुन्तला के गर्भ के लक्षण अधिक स्पष्ट हो गए थे। अतः कुलपति कण्व ने उसे दो तपस्वियों और एक तपस्विनी की देख-रेख में, राजा दुष्यन्त के पास भेजने का निश्चय किया।

को विस्मृत स्वप्न की तरह सर्वथा भूल गए थे। कुलपति कण्व के आश्रम में पदार्पण, ऋषि-कन्या शकुन्तला से विवाह, उसे शीघ्र ही राजमहल में बुला लेने का वचन– उन्हें कुछ भी याद न था। अतः राजा ने उसे अपनाने से इन्कार कर दिया। शकुन्तला ने अभी तक घूंघट काढ़ रखा था। जब तपस्वियों द्वारा दी गई सफ़ाई का राजा पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, तो उसने यह सोच कर घूंघट हटा दिया कि उसे देख कर शायद उसके पति उसे पहचान लें। शकुन्तला सर्वांग-सुन्दरी थी। उसके विलक्षण रूप को देखकर राजा स्तब्ध हो उठे। किन्तु दुष्यन्त चरित्रवान् राजा थे। सम्पूर्ण सौन्दर्य की स्वामिनी को अनायास ही पत्नी के रूप में प्राप्त करने का लोभ भी उन्हें पथ-भ्रष्ट नहीं कर सका, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उन्होंने उस लड़की से कभी विवाह नहीं किया।

सहसा शकुन्तला को उस मुद्रिका का ध्यान आया जो दुष्यन्त ने आश्रम से प्रस्थान से पूर्व उसे पहनायी थी। उसे विश्वास था कि राजा अपने नाम से अंकित शाही अंगूठी को देखते ही उसे पहचान लेंगे। उसे राजा को दिखाने के लिए उसने झट से अपना हाथ आगे बढ़ाया। किन्तु दुर्भाग्य की बात, वह मुद्रिका अब शकुन्तला की अंगुलि में नहीं थी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वह रास्ते में शची तीर्थ पर गंगा नदी में गिर गई थी।

जब राजा को तपोवन में घटी घटनाओं को याद दिलाने का कोई भी यत्न सफल नहीं हुआ, तो तपस्वियों ने घोषणा की–"यदि शकुन्तला की दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह की बात सत्य है, तो राजा के अस्वीकार करने पर भी, इसे उनके महल में रहना होगा, और यदि यह बात सत्य नहीं है, तो उसके लिए पिता के आश्रम में कोई स्थान नहीं है, और हम इसे वापस नहीं ले जा सकते।" इतना कहकर, वे शकुन्तला को वहीं छोड़, आश्रम को लौट गए।

स्थान की ओर बढ़ी। जब वे लोग एक सरोवर के तट पर पहुंचे, तो रुक गए। प्रांचीन परम्परा के अनुसार, परिवार के सदस्य, प्रिय सम्बन्धी को विदा करने के लिए जल की सीमा तक ही जाते थे। शकुन्तला के पिता तथा उसकी दोनों सखियों ने वहीं से आश्रम को लौटने का निश्चय किया। किन्तु विदा लेने से पहले, प्रियंदा तथा अनसूया ने शकुन्तला से कहा कि यदि राजा तुम्हें पहचानने में विलम्ब करें, तो उन्हें उनके नाम से अंकित मुद्रिका दिखा देना।

तत्पश्चात् शकुन्तला तथा उसके मार्ग-रक्षक राजधानी हस्तिनापुर की ओर बढ़े। रास्ते में, वे गंगा नदी के तट पर स्थित शची तीर्थ पर थोड़ी देर के लिए रुके। पवित्र जल को प्रणाम करने के लिए ज्यों ही शकुन्तला थोड़ा नीचे झुकी, राजा दुष्यन्त की मुद्रिका उसकी अंगुली से फिसल कर नदी में जा गिरी। शकुन्तला को उसके गिरने का पता तक न चला। दुर्वासा के शाप के संदर्भ में, शकुन्तला के जीवन की यह बहुत बड़ी दुर्घटना थी।

तपस्वियों के संरक्षण में शकुन्तला जिस समय राजा के महल में पहुंची वे अपने कक्ष में विश्राम कर रहे थे। आश्रम से तपस्वियों के आगमन की सूचना पाकर राजा ने राजपुरोहित से उन्हें सादर लिवा लाने के लिए कहा। महाराज के सम्मुख आने पर, उनमें से एक तपस्वी ने उन्हें कुलपति कण्व का सन्देश कह सुनाया—

> "आपने पारस्परिक सहमति से मेरी पुत्री से विवाह कर लिया। चूंकि आप दोनों एक-दूसरे कि लिए सर्वथा उपयुक्त थे, मैंने उसका समर्थन भी कर दिया। अब यह गर्भवती है। अतः मैं इसे आपके पास भेज रहा हूं ताकि आप इस सम्बन्ध में सभी आवश्यक धर्मानुष्ठान सम्पन्न कर सकें।"

महर्षि कण्व का सन्देश सुन, राजा दुष्यन्त आश्चर्य-चकित हो गए। दुर्वासा के शाप के परिणामस्वरूप, वे तपोवन की सभी घटनाओं

को विस्मृत स्वप्न की तरह सर्वथा भूल गए थे। कुलपति कण्व के आश्रम में पदार्पण, ऋषि-कन्या शकुन्तला से विवाह, उसे शीघ्र ही राजमहल में बुला लेने का वचन— उन्हें कुछ भी याद न था। अतः राजा ने उसे अपनाने से इन्कार कर दिया। शकुन्तला ने अभी तक घूंघट काढ़ रखा था। जब तपस्वियों द्वारा दी गई सफ़ाई का राजा पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, तो उसने यह सोच कर घूंघट हटा दिया कि उसे देख कर शायद उसके पति उसे पहचान लें। शकुन्तला सर्वांग-सुन्दरी थी। उसके विलक्षण रूप को देखकर राजा स्तब्ध हो उठे। किन्तु दुष्यन्त चरित्रवान् राजा थे। सम्पूर्ण सौन्दर्य की स्वामिनी को अनायास ही पत्नी के रूप में प्राप्त करने का लोभ भी उन्हें पथ-भ्रष्ट नहीं कर सका, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उन्होंने उस लड़की से कभी विवाह नहीं किया।

सहसा शकुन्तला को उस मुद्रिका का ध्यान आया जो दुष्यन्त ने आश्रम से प्रस्थान से पूर्व उसे पहनायी थी। उसे विश्वास था कि राजा अपने नाम से अंकित शाही अंगूठी को देखते ही उसे पहचान लेंगे। उसे राजा को दिखाने के लिए उसने झट से अपना हाथ आगे बढ़ाया। किन्तु दुर्भाग्य की बात, वह मुद्रिका अब शकुन्तला की अंगुलि में नहीं थी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वह रास्ते में शची तीर्थ पर गंगा नदी में गिर गई थी।

जब राजा को तपोवन में घटी घटनाओं को याद दिलाने का कोई भी यत्न सफल नहीं हुआ, तो तपस्वियों ने घोषणा की—"यदि शकुन्तला की दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह की बात सत्य है, तो राजा के अस्वीकार करने पर भी, इसे उनके महल में रहना होगा, और यदि यह बात सत्य नहीं है, तो उसके लिए पिता के आश्रम में कोई स्थान नहीं है, और हम इसे वापस नहीं ले जा सकते।" इतना कहकर, वे शकुन्तला को वहीं छोड़, आश्रम को लौट गए।

राजा किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति में थे। न तो वे शकुन्तला को अपना सकते थे और न ही निकाल बाहर करना चाहते थे। अतः उन्होंने पुरोहित के इस सुझाव को मान लिया कि शिशु के जन्म तक उसे महल में रहने दिया जाये। शकुन्तला के पास भी इसके सिवा कोई चारा न था। राजा के गान्धर्व विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार करते समय उसने उनकी नेकनियती पर पूर्ण विश्वास किया था, अतः आज उन द्वारा परित्यक्त होने पर वह स्तब्ध हो गई। इस भयंकर निराशा की स्थिति में वह पुकार उठी--"मात वसुन्धरे"! मुझे अपने अन्दर समा लो।" तभी एक चमत्कार हुआ। एक दिव्य विभूति आकाश से उतरी और शकुन्तला को हाथों में उठा कर अन्तर्धान हो गई। यह शकुन्तला की मां अप्सरा मेनका थी। बेटी को विपत्ति में देख, वह सहायता के लिए वहां आ पहुंची थी। राजा, यह सब देख आश्चर्य-चकित हो गए। उनका मन कह रहा था कि उनसे कोई भूल हो गई है, किन्तु भूल कहां हुई, यह वे समझ नहीं पा रहे थे।

कई दिन गुज़र गए। एक दिन प्रातः राजा के सिपाहियों ने एक धीवर को पकड़ लिया जो बाज़ार में राजा के नाम से अंकित शाही मुद्रिका को बेचने की चेष्टा कर रहा था। उनके मुखिया ने धीवर पर चोरी का दोष लगाया और उसे उचित दण्ड दिलवाने के लिए महाराजा दुष्यन्त के सम्मुख प्रस्तुत किया।

राजा ने ज्यों ही मुद्रिका को देखा, दुर्वासा के शाप का कुप्रभाव नष्ट हो गया। राजा के शिकार पर जाने के बाद तपोवन में जो घटनाएं घटी थीं, वे उन्हें याद हो आईं। निस्सन्देह यह वही मुद्रिका थी जो राजा ने नववधु शकुन्तला को दी थी। किन्तु वह धीवर के हाथ कैसे लगी? दरअसल, अंगूठी के जल में गिरते ही एक बड़ी मछली ने उसे निगल लिया था। उस मछली को पकड़ कर धीवर ने जब उसका पेट काटा तो वह मुद्रिका उसे मिल गई थी। राजा ने उस धीवर को तुरन्त छोड़ देने का आदेश दिया। केवल इतना ही नहीं। उसे उस बहुमूल्य अंगूठी

की कीमत के बराबर पारितोषिक भी दिया गया।

महाराजा दुष्यन्त अपनी विधि-सम्मत पत्नी के परित्याग के कारण अपराध एवं अनुताप की भावना से आहत हो उठे थे। उनके दुःख की कोई सीमा न थी। पश्चाताप की अग्नि में निरन्तर जलते रहने के कारण उन्हें न दिन को आराम था, न रात को चैन। उनकी प्रेयसी कहां गई, इसका उन्हें तनिक भी आभास नहीं था। वह प्यास से व्याकुल उस व्यक्ति की तरह थे जो पहले तो शीतल जल मिलने पर उसे ठुकरा देता है और फिर प्यास बुझाने के लिए मृग-तृष्णा के पीछे मारा-मारा फिरता है।

इसी मनःस्थिति में राजा ने कितना ही समय बिता दिया। एक दिन देवराज इन्द्र का सारथि मातलि उनके पास अपने स्वामी का सन्देश लाया। कुछ असुर इन्द्र के राज्य में उत्पात मचाने लगे थे और वे उनसे युद्ध करने पर विवश हो गए थे। अपने शत्रुओं को पराजित करने के लिए देवराज ने राजा दुष्यन्त की सहायता मांगी थी। दुष्यन्त तुरन्त मातलि के साथ चलने को तैयार हो गए। उन्होंने सोचा कि युद्ध में शौर्य-प्रदर्शन से शायद उन्हें कुछ देर के लिए मर्मान्तक पीड़ा से छुटकारा मिल जाए।

युद्ध में देवराज इन्द्र जीत गए। उनके शत्रुओं को मुंह की खानी पड़ी। इन्द्र को विजय दिलाने में दुष्यन्त ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उन्हें विदा करने से पहले देवराज इन्द्र ने उनका सार्वजनिक सम्मान किया।

तत्पश्चात् राजा दुष्यन्त ने, इन्द्र के रथ से भूलोक पर अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया। रथ की बागडोर इस बार भी मातलि के हाथों में थी। जब वे पृथ्वी के निकट पहुंचे तो राजा को स्वर्ण-पुञ्ज की तरह देदीप्यमान एक पर्वत दिखाई दिया। दुष्यन्त के पूछने पर मातलि ने उन्हें सूचित किया कि वे हेमकूट पर्वत के निकट पहुंच गए हैं जहां

देवर्षि मारीच तथा किंपुरुष जाति के कई उपदेवता अपनी धर्मपत्नियों सहित तपस्या करते हैं। राजा ने इच्छा प्रकट की कि वे हस्तिनापुर लौटने से पूर्व, देवर्षि मारीच तथा अन्य तपस्वियों के दर्शन कर, उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना चाहेंगे। मातलि ने रथ की गति को धीमा किया और उसे हेमकूट पर उतार लिया। वे तुरन्त राजर्षि के आश्रम की ओर चल पड़े। वातावरण शान्त और पवित्र था। राजा ने मातलि से कहा कि, "आप पहले जा कर महानुभाव मारीच को हमारे आगमन की सूचना दें और उनसे कहें कि हम उनके दर्शनों की अनुमति चाहते हैं।"

जब मातलि चला गया तो राजा ने थोड़ी ही दूर एक बालक को सिंह-शावक से खेलते देखा। वह उसके मुंह को बलपूर्वक खोल कर उसके दांत गिनने की चेष्टा कर रहा था। उसके निकट ही दो तपस्विनियां खड़ी थीं जो उसे शावक को तंग करने से रोक रही थीं। उन्हें डर था कि कहीं उसकी मां सिंहनी उत्तेजित होकर, बालक पर आक्रमण न कर दे। किन्तु बालक को इस बात की तनिक भी चिन्ता न थी, मानो डर नाम की वस्तु को वह जानता ही न हो। उसने सिंह के बच्चे को तभी छोड़ा जब तपस्विनियों ने उसे कोई सुन्दर खिलौना देने का वचन दिया तथा उन्हीं की प्रार्थना पर राजा ने उसे गोद में लिया।

राजा ने ज्यों ही बालक का स्पर्श किया, उनके समस्त शरीर में सुखद अनुभूति का आभास हो उठा। वे उसके अनुपम साहस तथा निर्भीकता से बहुत प्रभावित हुए थे और उनके मन में उसके लिए विशेष मोह की भावना जाग उठी थी। तपस्विनियां भी यह देख कर हैरान हो गई कि बालक तथा आगन्तुक के रूप-रंग में विलक्षण साम्य है। राजा ने तपस्विनियों से जब बालक के सम्बन्ध में पूछा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वह कोई ऋषिकुमार नहीं, अपितु पुरु का वंशज है। चूंकि राजा स्वयं पुरु-वंशी थे, उनके मन में आशा की एक नई किरण फूट पड़ी। हो सकता है कि वह उन्हीं का पुत्र हो। किन्तु किसी मनुष्य

का पुत्र उपदेवताओं के बीच कैसे रह सकता है? तब एक तपस्विनी उनकी शंका का समाधान करती हुई बोली—"इस बालक की मां एक अप्सरा की बेटी है और इसीलिए मां-बेटे को यहां रहने की सुविधा प्राप्त है। दर असल, इस बालक का जन्म देवर्षि मारीच के आश्रम में हुआ था।"

यह सब सुन कर राजा रोमाञ्चित हो उठे। उनके जीवन की एकमात्र साध के पूरा होने के सभी लक्षण स्पष्ट होने लगे थे। और जब उन्हें पता लगा कि बालक की मां का नाम शकुन्तला है और पति के स्वीकार न करने पर उसे यहां लाया गया था तो उन्हे विश्वास हो गया कि उनकी विरहिणी पत्नी इसी आश्रम में रहती है और यह बालक उन्हीं का पुत्र है। अपनी पत्नी से पुनर्मिलन तथा उस बालक को पुत्र रूप में अपनाने की सम्भावना से वे आनन्द-विभोर हो गए।

शकुन्तला ने जब आश्रम में एक विशिष्ट अतिथि के आगमन तथा अपने पुत्र की उससे समता की बात सुनी, तो वह तुरन्त वहां आ पहुंची। कड़ी तपस्या से उसका शरीर क्षीण हो गया था किन्तु उसके उसका सहज सौन्दर्य एवं आकर्षण कम नहीं हुआ था। दुष्यन्त भी शकुन्तला के विरह की व्यथा तथा पश्चाताप की अग्नि में निरन्तर जलते रहने के कारण, दुर्बल हो गए थे। किन्तु दोनों ने एक-दूसरे को अनायास ही पहचान लिया।

इस बीच महर्षि मारीच ने राजा को कहला भेजा कि वे उनका स्वागत करने के लिए तैयार हैं। राजा दुष्यन्त, अपनी पत्नी और पुत्र के साथ महर्षि की सेवा में उपस्थित हुए। मारीच ने चिन्तन-शक्ति से, दुर्वासा के शाप तथा उसके परिणाम-स्वरूप राजा द्वारा शकुन्तला के परित्याग की बात पहले ही जान ली थी। उन्होंने वह बात दुष्यन्त तथा शकुन्तला को कह सुनाई। शकुन्तला ने जब यह सब सुना तो परित्याग की पीड़ा से विक्षुब्ध उसका मन राजा के प्रति पुनः अनुरक्त हो उठा। पश्चाताप की पीड़ा से सन्तप्त राजा ने भी गहन की शान्ति

नी। महर्षि मारीच ने राजा दुष्यन्त के शकुन्तला तथा पुत्र से मिलन का सुखद समाचार, कुलपति कण्व को भी भेज दिया।

देवताओं तथा ऋषियों-मुनियों से आशीर्वाद प्राप्त कर, राजा दुष्यन्त रानी शकुन्तला तथा पुत्र के साथ अपनी राजधानी को लौट आए। अब उनके जीवन में नई स्फूर्ति, नया उत्साह, नया निखार आ गया था। दाम्पत्य-जीवन के सभी सुख भोगते हुए वे दीर्घ काल तक राज करते रहे।

□□

4. मालविकाग्निमित्र

'मालविकाग्निमित्र' पांच अंकों का नाटक है। इसमें राजा अग्निमित्र तथा रूपसी मालविका की प्रणय-कथा वर्णित है। राज-महिषी धारिणी की परिचारिका मालविका, अपने अनुपम सौन्दर्य से राजा के मन को मोह लेती है। राजा की छोटी रानी, उससे ईर्ष्या करने लगती है। राजा अपनी प्रेमिका मालविका से मिलने के लिए अनेक प्रयत्न करता है। अन्त में भेद खुलता है कि मालविका वस्तुतः एक राजकुमारी है और उसका विवाह अग्निमित्र से हो जाता है।

विख्यात समालोचक रा०डी० कारमर्कर के कथनानुसार, "मालविकाग्निमित्र' कुल मिला कर एक आनन्ददायक नाटक है। इसका कथानक सरल है किन्तु नाटकीय क्रियाशीलता के कारण पाठक की रुचि अन्त तक बनी रहती है।"

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व, दक्षिण-पश्चिमी भारत में शुंग वंश के राजा राज करते थे। उनमें अग्निमित्र सर्वाधिक विख्यात है। उसकी दो रानियां थीं—धारिणी और इरावती। धारिणी बड़ी थी। वह परिपक्व और सहनशील थी। इरावती तीक्ष्ण स्वभाव की थी। और कुछ अधीर भी। किन्तु दोनों के मन में राजा के प्रति एक समान श्रद्धा थी और वह भी उन्हें बहुत प्यार करता था।

धारिणी का एक भाई था, वीरसेन। राजा ने उसे एक सीमान्त दुर्ग का सेनापति नियुक्त कर रखा था। एक बार वीरसेन के पास मालविका नाम की सुन्दर युवती लाई गई जिसे नृत्य-कला में विशेष रुचि थी। उसने उसे उपहार-स्वरूप अपनी बहन धारिणी

के पास भेज दिया। उसे विश्वास था कि समुचित शिक्षा प्राप्त कर मालविका कुशल नृत्यांगना के रूप में निखर उठेगी। धारिणी ने इसी विचार से उसके प्रशिक्षण के लिए एक सुयोग्य आचार्य की व्यवस्था कर दी। उसका नाम गणदास था।

एक दिन अग्निमित्र धारिणी से मिलने गए और उन्होंने वहां एक चित्र देखा जिस में रानी परिचारिकाओं से घिरी बैठी थी। उनमें मालविका भी थी। उसके रूप से आकृष्ट होकर, उन्होंने रानी से उसका नाम पूछा। रानी ने उनकी बात को टाल दिया किन्तु जब राजा ने आग्रह किया तो धारिणी की छोटी बहन वसुलक्ष्मी, जो अभी बहुत छोटी थी, बोल उठी कि वह मालविका है।

जब धारिणी ने देखा कि उसके पति, रूपसी मालविका में विशेष रुचि का प्रदर्शन कर रहे हैं, तो वह उसे उनकी दृष्टि से ओझल रखने लगी। किन्तु इस सम्बन्ध में वह जितना अधिक यत्न करती, राजा की उत्सुकता मालविका को देखने के लिए उतनी ही अधिक बढ़ती जाती।

इसी बीच, विदर्भ के राजा का एक दूत अपने स्वामी से अग्निमित्र के नाम एक पत्र लाया जिससे वे विचलित हो उठे। विदर्भ का राज्य विदिशा की सीमा के साथ लगता था। वहां के राजा यज्ञसेन को अग्निमित्र की दिनों-दिन बढ़ती शक्ति तथा लोकप्रियता से जलन होने लगी थी। किन्तु उसका चचेरा भाई, कुमार माधवसेन, राजा अग्निमित्र का दोस्त था। वह उससे अपनी बहन का विवाह करना चाहता था। यज्ञसेन इस प्रस्ताव के विरुद्ध था। अतः जब माधवसेन अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए, बहन को साथ लेकर विदिशा जा रहा था, तो यज्ञसेन ने उसे पकड़ कर बंदी बना लिया था। इस मुठभेड़ से पैदा हुई गड़बड़ में वह कन्या कहीं खो गई थी। यह समाचार पाकर, राजा अग्निमित्र ने विदर्भ के राजा को सन्देश भेजा था कि वह माधवसेन को मुक्त कर दे। अभी-अभी विदर्भ से आया

हुआ राजदूत जो पत्र लाया था वह उसी सन्देश के उत्तर में था। राजा यज्ञसेन ने इस पत्र में अग्निमित्र को लिखा था—"मैं आप के सुझाव को मानने के लिए तैयार हूं बशर्ते आप मेरे साले मयूरसचिव को छोड़ दें जिसे आपने पहले से कैद कर रखा है।"

यहां यह बता देना प्रासंगिक होगा कि राजा अग्निमित्र ने मयूरसचिव को बन्दी बना लिया था क्योंकि उसने उनकी प्रजा को उन्हीं के विरुद्ध उकसाया था।

राजा अग्निमित्र को यह सौदा स्वीकार नहीं था। राजदूत द्वारा लाये गये उत्तर से वे भड़क उठे। उन्होंने सेनापति वीरसेन को तुरन्त आदेश भेजा कि वह अपने सिपाहियों सहित विदर्भ के राजा पर धावा बोल दे और उसे इस धृष्टता का मजा चखाए।

इन्हीं दिनों अग्निमित्र मालविका को देखने के लिए अधीर हो उठे थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने विदूषक की सहायता लेने का निश्चय किया। वास्तव में विदूषक राजा का केवल मनोरंजन ही नहीं करता था, अपितु उनका निजी विश्वासपात्र मित्र भी था। राजा ने उसे कोई ऐसी योजना बनाने के लिए कहा जिसमें वे मालविका को साक्षात् देख सकें। विदूषक के लिए यह कार्य कठिन नहीं था। तिकड़म भिड़ाने में वह सिद्धहस्त था। उसे झट से एक तरकीब सूझ गई। उसे सुन कर राजा को भी उसकी अक्ल की दाद देनी पड़ी।

जैसा कि पहले बताया गया है, रानी धारिणी ने मालविका को प्रशिक्षित करने का कार्य-भार कुशल नृत्याचार्य गणदास को सौंप दिया था। उन्हीं दिनों राजा के दरबार में, नृत्य-कला में निपुण एक अन्य आचार्य हरदत्त भी था। व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के कारण, इन दोनों आचार्यों की आपस में नहीं बनती थी। विदूषक महाशय पहले गणदास के पास गए और बोले—"जानते हो, तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी

हरदत्त ने दरबार में क्या कहा है? उसने कहा है कि नृत्य-शिक्षक के रूप में तुम उसके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हो।" उसके बाद विदूषक हरदत्त के पास गए और कहने लगे, "मुझे कहना तो नहीं चाहिए किन्तु तुम्हारा शुभचिन्तक होने के नाते चुप भी कैसे रहूं? गणदास कहता फिरता है कि उसमें और तुममें समुद्र और तालाब जितना अन्तर है।"

इस पर दोनों आचार्य भड़क उठे और सम्भवतः विदूषक के ही कहने पर, वे महाराज अग्निमित्र के पास पहुंचे और उनसे निवेदन किया, "महाराज! आप स्वयं हमारे नृत्य सम्बन्धी ज्ञान तथा शिक्षण-कला को जांच कर इस बात का निर्णय दें कि हम में से कौन अधिक निपुण है? इस उद्देश्य के लिए हम दोनों आपके सम्मुख अपनी शिष्याओं का नृत्य-प्रदर्शन करेंगे।" महाराज तो ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में थे। झट मान गए। किन्तु उन्होंने सोचा कि उनके लिए अकेले इस बात का निर्णय देना ठीक नहीं रहेगा। चूंकि हरदत्त राजदरबार का सदस्य है, उसके हक में निर्णय होने पर राजा पर पक्षपात का दोष लग सकता था। संयोगवश इन्हीं दिनों राजमहल में कौशिकी नाम की एक बौद्ध तपस्विनी रहती थी जिसे नृत्य-कला तथा अभिनय का विशेष ज्ञान था। अतः राजा ने सुझाव दिया कि तपस्विनी कौशिकी तथा महारानी धारिणी, दोनों ही इस नृत्य-प्रतियोगिता को देखें और विचारणीय विषय पर फैसला देने में उनकी सहायता करें। तभी महारानी तथा परिव्राजिका कौशिकी को वहां बुलाया गया और उन्हें सारी बात समझा दी गई। धारिणी राजा के मन की बात जानती थी, अतः वह इस बात के हक में नहीं थी कि मालविका उनके सम्मुख नृत्य प्रस्तुत करे। किन्तु उसकी एक न चली, क्योंकि गणदास स्वयं आग्रह करने लगा कि वह अपनी शिष्या के नृत्य-प्रदर्शन द्वारा, इस कला में अपनी कुशलता को प्रमाणित करेगा। आखिर फैसला इस बात पर हुआ कि कौशिकी दोनों

छात्राओं के नृत्य एवं अभिनय के गुण-दोषों का विवेचन करे तथा न्याय-संगत निर्णय करने में राजा उसे पूरा सहयोग दें। यह बात भी निश्चित हो गई कि चूंकि दोनों आचार्यों में गणदास आयु में हरदत्त से बड़ा है, वह अपनी शिष्या मालविका को पहले प्रस्तुत करेगा।

जब मालविका रंगमंच पर आई, तो ऐसे लगा मानो परिपूर्ण सौन्दर्य मूर्तिमान् हो उठा हो। जब राजा ने उसे चित्र में देखा था तो उसे लगा था कि कोई स्त्री यथार्थ में इतनी सुन्दर हो ही नहीं सकती, और अब उसे लगा कि मालविका, चित्रित युवती से कहीं अधिक सुन्दर है। वह मन्त्र-मुग्ध हो उठा। मालविका का नृत्य-प्रदर्शन भी सभी प्रकार से अनिन्द्य था। अंगों के लयात्मक संचालन और चेहरे पर तीव्र गति से बदलते भावों के कारण वह राजा को और भी अधिक आकर्षक लगी। मालविका को साक्षात् देख कर जो अग्नि राजा के हृदय में सुलगने लगी थी, वह उसके नृत्य को देख कर भड़क उठी।

प्रदर्शन की समाप्ति पर जब मालविका वहां से जाने लगी तो गणदास ने उसे तनिक ठहरने के लिए कहा ताकि वह जाने से पहले जान ले कि उसके नृत्य एवं अभिनय में कोई त्रुटि तो नहीं रह गई। इस पर विदूषक ने छूटते ही कहा कि उसकी समझ में प्रदर्शन को सर्वथा दोष-रहित नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह उस भूल को तभी बतायेगा जब परिव्राजिका कौशिकी अपना मत प्रकट कर चुकेंगी। बौद्ध तपस्विनी ने मालविका के नृत्य को सर्वथा अनिन्द्य घोषित किया। राजा ने भी उस की भूरि-भूरि प्रशंसा की। गणदास ने अब विदूषक से पूछा कि प्रदर्शन में कौन-सी त्रुटि रह गई है। विदूषक ब्राह्मण था और लोक-प्रसिद्ध पेटू भी। बोला,"परम्परा के अनुसार मालविका के प्रथम प्रदर्शन से पूर्व ब्राह्मण को भोज मिलना चाहिए था और चूंकि इस सम्बन्ध में उसकी अनदेखी की गई है, प्रदर्शन को त्रुटि-रहित नहीं कहा जा सकता।"इस पर सभी

ृदय खुशी से धड़कने लगा, किन्तु उन्होंने अपने-आपको तत्काल प्रकट करना ठीक नहीं समझा। वे विदूषक को साथ लेकर एक लताकुन्ज की ओट में जा छिपे जहां से वे मालविका की गतिविधियों को अदृश्य होकर देख सकते थे। मालविका गहरी सोच में डूबी हुई थी। राजा का मन उन्हें यह कहता प्रतीत हुआ कि उसके मन में बसा व्यक्ति उनके सिवाय दूसरा नहीं हो सकता। वे अब यह बात मालविका के मुख से सुनने के लिए बैचेन हो रहे थे।

इतने में वकुलावलिका वहां आ पहुंची। उन दोनों की बातचीत से जाहिर हुआ कि बसन्त ऋतु के आगमन के बावजूद, उद्यान के अशोक वृक्ष पर फूल नहीं आए। परम्परागत धारणा के अनुसार, ऐसी स्थिति में अशोक तभी खिलता है जब कोई सुन्दर स्त्री, नूपुर से अलंकृत पांव से उसे ठोकर मार दे। यह काम महारानी धारिणी ने स्वयं करना था, किन्तु चूंकि झूले से गिर पड़ने के कारण उसके पांव में चोट आ गई थी, उसने इस कार्य के लिए अपनी प्रिय परिचारिका मालविका को चुना था।इसीलिए मालविका प्रमद-वन में आई थी और उसकी सखी वकुलावलिका पांव में अलता लगाने और नूपुर पहनाने के लिए वहां पहुंची थी।

जब वकुलावलिका, मालविका के पांव को अलंकृत कर रही थी, तो उसने बड़ी कुशलता से उसे राजा का सन्देश कह सुनाया। पहले तो मालविका को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, किन्तु जब वकुलावलिका ने राजा के प्रेम की बात खोल कर सुनाई, तो मालविका की खुशी का ठिकाना न रहा।

इस बीच इरावती भी, पति के संग झूला झूलने के लिए प्रमद-वन पहुंच गई थी। पति की खोज करते, वह अपनी परिचारिका के साथ उसी स्थान पर आ पहुंची जहां मालविका, अशोक वृक्ष को ठोकर मारने के लिए तैयार हो रही थी। वे दोनों भी छिप कर एक कोने में खड़ी हो गई। राजा के आगमन के सम्भावित समय पर मालविका

को वहां देख कर पहले तो इरावती का माथा ठनका, पर जब उसे पता लगा कि वह धारिणी की इच्छानुसार वहां आई है, तो वह आश्वस्त हो गई। किन्तु जब उसने बकुलावलिका के मुख से राजा के प्रेम-सन्देश को सुना तो वह क्रोध से जल-भुन गई। उसके तुरन्त बाद जब मालविका अशोक वृक्ष को ठोकर मार चुकी, तो इरावती ने देखा कि राजा लता-कुन्ज की ओट से निकल कर मालविका की ओर लपके और उसका हाथ पकड़ कर, उसे अनन्य प्रेम का विश्वास दिलाने लगे। वह आपे से बाहर हो गई। उसने राजा को रंगे हाथों पकड़ लिया था और वह पति के इस गम्भीर अपराध को क्षमा करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। मालविका तथा बकुलावलिका तो एकदम घबरा गईं और सहसा वहां से खिसक गईं। राजा भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। उन्होंने विदूषक की ओर इस आशय से देखा कि कदाचित् वह इस गुत्थी को सुलझा सके किन्तु विदूषक को भी जल्दी में कुछ न सूझा। उस ने राजा को परामर्श दिया कि वे वहाँ से शीघ्रता से भाग खड़े हों। राजा को यह सुझाव अपने प्रतिष्ठित पद के अनुरूप नहीं लगा। उन्होंने झट से बहाना बनाया कि चूंकि इरावती ने वहां पहुंचने में देर कर दी थी, वे दासियों से आकस्मिक भेंट होने पर, उनसे मन-बहलाव कर रहे थे। किन्तु रानी को बहकाना इतना आसान नहीं था। जब राजा को और कोई रास्ता न दीख पड़ा तो वे क्षमा-याचना के लिए इरावती के चरणों में गिर पड़े। किन्तु रानी झुंझला कर वहां से चली गई। राजा को उसके जाने का पता तक न लगा। कुछ क्षण बाद, विदूषक ने उन्हें उठने के लिए कहा, क्योंकि रानी अब वहां नहीं थी।

झूले से गिरने के कारण रानी धारिणी के पांव में मोच आ गई थी। अगले दिन जब इरावती उसका कुशल-क्षेम पूछने गई तो उसने बकुलावलिका द्वारा मालविका [illegible] राजा के प्रेम-सन्देश तथा उनके मालवि[illegible] प्रणय [illegible] सुनाई। प्रमद-वन में जो दृ[illegible] ने [illegible] उसने

स्पष्ट था कि मालविका भी इस विषय में सर्वथा निर्दोष नहीं थी। इस प्रकार वकुलावलिका और मालविका, दोनों को ही धृष्टता का दोषी ठहराया गया। रानी धारिणी ने, विशेष रूप से सहपत्नी इरावती का मान रखते हुए, दोनों परिचारिकाओं को महल के तहखाने में कैद कर लिया। उसने अपनी एक विश्वसनीय दासी माधविका को पहरे पर बिठा दिया तथा उसे कड़ा आदेश दिया कि वह सर्प-मुद्रा जड़ित उसकी निजी मुद्रिका देखे बिना उन्हें मुक्त न करे।

राजा को विदूषक से जब इस बात का पता लगा तो वे विचलित हो उठे। उन्होंने, उन दोनों युवतियों को कैद से छुड़वाने के लिए, विदूषक से ही कोई युक्ति सोचने के लिए कहा। विनोदी ब्राह्मण ऐसी उलझी समस्याओं को सुलझाने में निपुण तो था ही, उसने झट से एक अनोखी तरकीब ढूंढ निकाली। इस बार उसने एक अन्य चतुर परिचारिका जयसेना की सहायता लेने का निर्णय किया और अपनी सारी योजना चुपके से राजा के कानों में कह सुनाई। राजा का मुख प्रसन्नता से चमक उठा।

राजा और विदूषक ने महारानी धारिणी का कुशल समाचार जानने के लिए उसके पास जाने की बात सोची। अग्निमित्र तो सीधे अपनी बड़ी रानी के कक्ष की ओर चले गए, किन्तु विदूषक पहले उद्यान में गया ताकि महारानी को भेंट करने के लिए फूलों का गुच्छा साथ लेता जाए। राजा को धारिणी के कक्ष में पहुंचे अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि विदूषक अत्यन्त घबराई हुई दशा में प्रविष्ट हुआ। सिसकियां भरते हुए उसने राजा को बतलाया कि जब वह अशोक वृक्ष से महारानी के लिए फूल तोडने लगा तो उसे एक सांप ने डस लिया। उसने अपनी अंगुलि पर सर्प-दंशन के चिह्न भी दिखलाए जो उसने एक कांटे की तीखी नोक से स्वयं बनाए थे। वहां सभी उपस्थित व्यक्ति चिन्तित हो उठे। रानी धारिणी विशेष रूप से

को वहां देख कर पहले तो इरावती का माथा ठनका, पर जब
पता लगा कि वह धारिणी की इच्छानुसार वहां आई है, तो
आश्वस्त हो गई। किन्तु जब उसने बकुलावलिका के मुख से
के प्रेम-सन्देश को सुना तो वह क्रोध से जल-भुन गई। उसके तुर
बाद जब मालविका अशोक वृक्ष को ठोकर मार चुकी, तो इरावती
देखा कि राजा लता-कुन्ज की ओट से निकल कर मालविका
ओर लपके और उसका हाथ पकड़ कर, उसे अनन्य प्रेम
विश्वास दिलाने लगे। वह आपे से बाहर हो गई। उसने राजा
रंगे हाथों पकड़ लिया था और वह पति के इस गम्भीर अपराध
क्षमा करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। मालविका
बकुलावलिका तो एकदम घबरा गईं और सहसा वहां से खिन्
गईं। राजा भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। उन्होंने विदूषक की
इस आशय से देखा कि कदाचित् वह इस गुत्थी को सुलझा
किन्तु विदूषक को भी जल्दी में कुछ न सूझा। उस ने राजा
परामर्श दिया कि वे वहाँ से शीघ्रता से भाग खड़े हों। राजा को
सुझाव अपने प्रतिष्ठित पद के अनुरूप नहीं लगा। उन्होंने झट
बहाना बनाया कि चूंकि इरावती ने वहां पहुंचने में देर कर दी थी,
दासियों से आकस्मिक भेंट होने पर, उनसे मन-बहलाव कर रहे
किन्तु रानी को बहकाना इतना आसान नहीं था। जब राजा को
कोई रास्ता न दीख पड़ा तो वे क्षमा-याचना के लिए इरावती
चरणों में गिर पड़े। किन्तु रानी झुंझला कर वहां से चली गई।
को उसके जाने का पता तक न लगा। कुछ क्षण बाद, विदूषक
उन्हें उठने के लिए कहा, क्योंकि रानी अब वहां नहीं थीं

झूले से गिरने के कारण रानी धारिणी के पांव में मोच
अगले दिन जब इरावती उसका कुशल-क्षेम पूछने
बकुलावलिका द्वारा मालविका को भेजे गए राजा
तथा उनके मालविका से प्रणय-निवेदन की बात
प्रमद-वन में जो दृश्य, इरावती ने अपनी आंखों से

कैद थीं। उन्होंने माधविका को मुद्रिका दिखाकर दोनों को कैद से छुड़वा लिया तथा समुद्रगृह में ले गया। पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार राजा अग्निमित्र भी शीघ्र ही वहां पहुंच गए तथा सीधे अन्दर चले गए। विदूषक समुद्रगृह के मुख्य द्वार पर पहरा देने लगा और बकुलावलिका कुछ आगे जा कर छिप कर खड़ी हो गई ताकि वह किसी अनचाहे व्यक्ति के अप्रत्याशित आगमन की उसे पहले से ही सूचना दे दे।

इससे थोड़ी देर पहले, रानी इरावती की दासी चन्द्रिका, संयोगवश इस ओर से गुज़री थी और उसने विदूषक को समुद्रगृह के पास देखा था। उसने बातों-बातों में, इसका जिक्र रानी की निजी परिचारिका निपुणिका से कर दिया और इस प्रकार यह बात इरावती तक जा पहुंची। उसने सोचा कि वह क्यों न पति के प्रिय मित्र विदूषक का हाल-चाल ही पूछ आए जो अभी सर्प-दंश के रोग से मुक्त हुआ था। अतः वह निपुणिका को साथ ले, समुद्रगृह पहुंच गई। इसी बीच विदूषक मुख्य द्वार के पास एक पाषाण-शिला देख, उस पर लेट गया था और शीतल पवन के झोंकों के कारण झपकी लेने लगा था। जब निपुणिका उसके पास आई तो उस ने उसे नींद में यूं बड़बड़ाते सुना-'हे मालविके, राजा तुम्हें इरावती से भी अधिक प्यार करें।' यह सुनकर इरावती और निपुणिका, दोनों क्रुद्ध हो उठीं। यह सोचकर कि कम्बख़्त ब्राह्मण एक बार सर्प-दंश का शिकार होने के कारण सांपों से बहुत डरता होगा, निपुणिका को उससे शरारत करने की सूझी। उसने सांप से मिलती-जुलती एक टेढ़ी लकड़ी को विदूषक के ऊपर फेंका। ब्राह्मण हड़बड़ा कर उठ बैठा और लकड़ी को सचमुच सांप समझ कर डर के मारे चिल्ला उठा-"बचाओ, बचाओ, मुझ पर सांप आ गिरा है।"

राजा अपने मित्र की चीख सुन कर भाग कर कमरे से बाहर निकले। मालविका भी, सांप का नाम सुन उन्हें सावधान करती हुई

पीछे दौड़ी। वकुलावलिका भी द्रुत गति से वहां आ पहुंची। विदूषक को शीघ्र ही अपनी गलती का अहसास हो गया और उसने राहत की सांस ली किन्तु रानी इरावती को अचानक वहां देख सभी चकरा गए। राजा की दशा तो सचमुच दयनीय थी। परन्तु यहां भाग्य ने उनका साथ दिया। ठीक उसी समय महारानी धारिणी की एक सेविका ने आकर सूचना दी कि उनकी छोटी बहन वसुलक्ष्मी, एक बड़े वानर के आकस्मिक आक्रमण से आतंकित हो उठी है और डर के मारे थर-थर कांप रही है। राजा बालिका को बहलाने तथा उसे सांत्वना देने के लिए झट वहां से चले गए।

कुछ दिन बाद, राजा के सीमान्त दुर्ग के सेनापति वीरसेन ने उनके पास सन्देश भेजा कि उसने विदिशा के शासक यज्ञसेन को युद्ध में परास्त कर दिया है, और कुमार माधवसेन को उसकी कैद से छुड़वा लिया है। वीरसेन ने यह भी लिखा कि महाराज की इस कृपा के बदले में, कुमार माधवसेन ने ढ़ेरों अनमोल रत्न तथा कुछ परिचारिकाएं उन के पास भेंट स्वरूप भेजी हैं जिन में दो प्रतिभा-सम्पन्न कन्याएं हैं।

महाराज अग्निमित्र वीरसेन के शौर्य से अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने यज्ञसेन से बदला नहीं लिया, अपितु विदर्भ राज्य को दोनों चचेरे भाइयों, यज्ञसेन और माधवसेन में बांट दिया।

इसी बीच रानी धारिणी ने राजा को सूचित किया कि मालविका के ठोकर मारने के चार दिन बाद ही अशोक वृक्ष खिल उठा है तथा उसके फूलों और पत्तियों पर अनूठा निखार आ गया है। रानी ने यह भी निवेदन किया कि वह उस हरे-भरे वृक्ष की शोभा राजा के साथ देखना चाहती है। राजा ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। रानी धारिणी, परिव्राजिका कौशिकी तथा मालविका के साथ प्रमद-वन में प[illegible] [illegible] भी अपने अभिन्न मित्र विदूषक

को ले कर वहां आ पहुंचे। वहीं यह निर्णय लिया गया कि विदर्भ से जो दो सुयोग्य कन्याएं आई हैं, उनका राजा से रानी धारिणी के समक्ष ही परिचय करा दिया जाए। जब रानी को ज्ञात हुआ कि वे दोनों कन्याएं संगीत में निपुण हैं तो उसने मालविका से कहा कि वह उनमें से एक को चुन ले जो संगीत में उसका साथ दे सके। जब उन कन्याओ ने मालविका को देखा तो वे आश्चर्य मे चिल्ला उठीं—"अरे, राजकुमारी जी! और यह कह कर वे मालविका के चरणों में गिर पड़ीं तथा उनकी आखों से आंसू बहने लगे। सभी विस्मित हो कर उन की ओर देखने लगे। वास्तविक स्थिति को जानने के लिए सभी उत्सुक थे।

इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए दोनों कन्याओं ने बताया, "हम दोनों कुमार माधवसेन की निजी परिचारिकाएं थीं और मालविका उनकी छोटी बहन है। जब यज्ञसेन के सैनिकों ने माधवसेन को पकड़ लिया, तो कुमार के मन्त्री, आर्य सुमति, राजकुमारी मालविका को बचा कर अपने साथ ले गए। हम दोनों पीछे रह गई। इसके बाद क्या हुआ, वह हम नहीं जानतीं।"

शेष कहानी को परिव्राजिका कौशिकी ने पूरा किया। उसने राजा को बताया—"मैं मन्त्री सुमति की बहन हूं। जब वे मालविका को यज्ञसेन के सैनिकों से बचा कर ले गए तो मैं भी उनके साथ थी। हम सब व्यापारियों के एक दल में शामिल हो गए जो आपकी राजधानी विदिशा की ओर आ रहा था। मन्त्री सुमति, राजकुमारी मालविका को आपके हाथों सौंप, अपने स्वामी माधवसेन की इच्छा को पूरा करना चाहते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश जब व्यापारियों का एक दल एक घने वन में से गुज़र रहा था तो डाकुओं के एक टोले ने उन पर आक्रमण कर दिया। सुमति ने राजकुमारी की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की बलि दे दी। मैं उन का दाह-संस्कार कर, किसी तरह आप के राज्य में पहुंच गई। उधर मालविका को सेनापति वीरसेन के

पीछे दौड़ी। बकुलावलिका भी द्रुत गति से वहां आ पहुंची। विदूषक को शीघ्र ही अपनी गलती का अहसास हो गया और उसने राहत की सांस ली किन्तु रानी इरावती को अचानक वहां देख सभी चकरा गए। राजा की दशा तो सचमुच दयनीय थी। परन्तु यहां भाग्य ने उनका साथ दिया। ठीक उसी समय महारानी धारिणी की एक सेविका ने आकर सूचना दी कि उनकी छोटी बहन वसुलक्ष्मी, एक बड़े वानर के आकस्मिक आक्रमण से आतंकित हो उठी है और डर के मारे थर-थर कांप रही है। राजा बालिका को बहलाने तथा उसे सांत्वना देने के लिए झट वहां से चले गए।

कुछ दिन बाद, राजा के सीमान्त दुर्ग के सेनापति वीरसेन ने उनके पास सन्देश भेजा कि उसने विदिशा के शासक यज्ञसेन को युद्ध में परास्त कर दिया है, और कुमार माधवसेन को उसकी कैद से छुड़वा लिया है। वीरसेन ने यह भी लिखा कि महाराज की इस कृपा के बदले में, कुमार माधवसेन ने ढ़ेरों अनमोल रत्न तथा कुछ परिचारिकाएं उन के पास भेंट स्वरूप भेजी हैं जिन में दो प्रतिभा-सम्पन्न कन्याएं हैं।

महाराज अग्निमित्र वीरसेन के शौर्य से अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने यज्ञसेन से बदला नहीं लिया, अपितु विदर्भ राज्य को दोनों चचेरे भाइयों, यज्ञसेन और माधवसेन में बांट दिया।

इसी बीच रानी धारिणी ने राजा को सूचित किया कि मालविका के ठोकर मारने के चार दिन बाद ही अशोक वृक्ष खिल उठा।
उसके फूलों और पत्तियों पर अनूठा निखार
भी निवेदन किया कि वह उस हरे-
देखना चाहती है। राजा ने इस प्र
रानी धारिणी, परिव्राजिका
प्रमद-वन में पहुंच गई। उ. र.

5. विक्रमोर्वशीय

'विक्रमोर्वशीय' पाँच अंकों का नाटक है। इसमें राजा पुरूरवा और दिव्य अप्सरा उर्वशी के प्रणय की रोमांचक कथा का वर्णन है। राजा अद्‌भुत शौर्य का प्रदर्शन कर, उर्वशी को एक राक्षस के चंगुल से बचा लेते हैं और देखते ही उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं। किन्तु अप्सरा को इन्द्रपुरी लौटना पड़ता है और उसका विछोह उनके लिए असह्य हो उठता है। महाराज पुरूरवा, असुरों के विरुद्ध युद्धों में देवराज इन्द्र की प्रायः सहायता करते थे। अतः उसकी कृपा के फलस्वरूप, राजा और उर्वशी विवाह-सूत्र में बंध जाते हैं। कुछ वर्षों तक आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वे दुर्भाग्यवश फिर बिछुड़ जाते हैं। एक चमत्कारिक घटना उनके पुनर्मिलन में सहायक होती है। एक मनुष्य और अप्सरा का सदा के लिए मिल कर रह पाना असम्भव-प्राय है किन्तु देवराज इन्द्र का पुरूरवा के प्रति अनुगृह इस असम्भव को सम्भव बना देता है।

भारत-विद्या के विख्यात विशेयज्ञ, विन्टरनित्स कहते हैं, "भारत में इस नाटक के अनेक पाठों की उपलब्धि इस बात का प्रमाण है कि यह नाटक देश में कितना अधिक लोकप्रिय था। इसका जर्मन तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में भी कई बार अनुवाद हो चुका है। इसे रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए भी कितने ही प्रयास किये गए हैं।"

प्राचीन भारत में पुरूरवा नाम के चन्द्रवंशी राजा राज करते थे। वे विश्व भर में वीरता के लिए विख्यात थे। देवराज इन्द्र भी शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में प्रायः राजा पुरूरवा की सहायता लेते थे। ऐसे ही एक युद्ध में राजा विजय प्राप्त कर, जब स्वर्ग से पृथ्वी की ओर लौट

सैनिकों ने डाकुओ के पंजे से छुड़वा लिया और अपने स्वामी के पास ले गए। वीरसेन ने उसे उपहार-स्वरूप अपनी बहन रानी धारिणी के पास भेज दिया।''

यहां यह बता देना प्रासंगिक होगा कि रानी धारिणी ने मालविका को वचन दिया था कि यदि अशोक वृक्ष उसकी ठोकर खा कर समय पर खिल उठा तो वह उसके मन की मुराद पूरी कर देगी। अब अशोक के पुष्पित हो उठने पर वह मालविका की किसी इच्छा की पूर्ति के लिए वचनबद्ध थी, और जब रानी को यह पता लगा कि मालविका वास्तव में राजकुमारी है, तो उसने निश्चय कर लिया कि वह राजा के साथ उसके विवाह के लिए स्वीकृति दे देगी। किन्तु ऐसा करने से पहले उसने उचित समझा कि वह इसके लिए दूसरी रानी इरावती की सहमति भी प्राप्त कर ले। उसने इरावती को यह सन्देश भेजा—''महाराज ने वीरसेन की सहायता से विदर्भ-राज पर विजय पा ली है। अब यह बात भी खुल गई है कि मालविका राजवंश से सम्बद्ध कुलीन कन्या है जिसका विवाह उसके अभिभावक राजा अग्निमित्र से करना चाहते थे। इन सुखद समाचारों से सभी जगह खुशी की लहर दौड़ गई है। मै चाहती हूं कि मैं भी मालविका को दिए गए वचन का आदर करते हुए, महाराज के साथ उसके विवाह का समर्थन कर दूं। मुझे बहुत प्रसन्नता होगी यदि इन सभी बातों को ध्यान में रख कर आप भी मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन करें।''

इरावती के मन में बड़ी रानी धारिणी के लिए बड़ी श्रद्धा थी। उसने महारानी के सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

राजा अग्निमित्र तथा मालविका का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। अब राजा नए उत्साह के साथ प्रजा-रंजन के कार्यों में लग गए तथा उनकी कीर्ति चारों और फैल गई।

□□

परिचारिका निपुणिका से कहा कि वह किसी तरह विदूषक से राजा के मन की बात का पता लगाए। निपुणिका चतुर तो थी ही, उसने विदूषक को फुसला कर राजा की उर्वशी से प्रेम की बात मालूम कर ली और रानी को उस की सूचना दे दी।

एक दिन उर्वशी के विरह ने राजा को अधिक व्याकुल कर रखा था। मन को बहलाने के लिए वे अभिन्न मित्र विदूषक को साथ ले, प्रमद-वन में एक लता-कुञ्ज की शीतल छाया में जा बैठे। वहां वे हृदय के बोझ को हल्का करने के लिए, अपनी मनोव्यथा का विस्तार से वर्णन करने लगे। उन्होंने विदूषक को बतलाया कि उनके लिए विरह की अग्नि को और अधिक सहन करना कठिन हो गया है। विदूषक ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि चूंकि उर्वशी भी उनसे प्रेम करती है, वह भी उनसे मिलने के लिए लालायित होगी।

उधर स्वर्ग में उर्वशी पुरूरवा से मिलने के लिए सचमुच बहुत व्याकुल थी। वह अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा को साथ ले पृथ्वी पर उतरी और राजा को ढूंढते हुए प्रमद-वन में आ पहुंची। उन्होंने देखा कि राजा पुरूरवा और विदूषक गहन वार्तालाप में संलग्न हैं और जब उर्वशी को मालूम हुआ कि वे उसी के विषय में बातचीत कर रहे हैं और राजा भी उसके वियोग में दु:खी हैं तो उसके मन को बहुत कुछ राहत मिली।

उर्वशी और चित्रलेखा दैवीसत्ता से सम्पन्न थीं और उनमें इच्छानुसार अदृश्य होने की क्षमता थी। वे स्वर्ग से अदृश्य रूप में ही आई थीं, अत: राजा तथा विदूषक उन्हें देख नहीं पा रहे थे। अपने आप को प्रकट करने से पहले उर्वशी ने प्रेम-निवेदन करना चाहा। उसने एक भोज-पत्र लिया, उस पर राजा से अपने प्यार की बात लिखी, लपेटा और उन दोनों के सम्मुख भूमि पर फेंक दिया। जब राजा ने उसे पढ़ा तो रोमाञ्चित हो उठे। चूंकि उनके हाथ

रहे थे तो उन्होंने कुछ अप्सराओं के चिल्लाने का स्वर सुना। राजा ने सारथी को रथ की गति धीमी करने के लिए कहा ताकि वे उनकी विपत्ति का कारण जान सकें। जब उन्हें मालूम हुआ कि एक राक्षस उनकी सर्वाधिक सुन्दर सहचरी उर्वशी तथा उसकी अंतरंग सखी चित्रलेखा को बलपूर्वक उठा कर ले गया है, तो राजा ने तुरन्त उसका पीछा किया। उन्होंने शीघ्र हीं राक्षस को जा पकड़ा। असुर, राजा पुरूरवा की शक्ति की ताब न ला सका और उसने मामूली संघर्ष के बाद घुटने टेक दिये। राजा दोनों अप्सराओं को छुड़ा, चित्रकूट पर्वत पर ले आए जहां उन्होंने अन्य अप्सराओं को प्रतीक्षा करने के लिए कहा था।

जब अप्सराओं की दोनों प्रिय सखियां सुरक्षित लौट आई, तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। राजा ने उनकी सखियों को बचाने के लिए जो स्वेच्छा से सहायता की थी, उसकी अप्सराओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उनके मन राजा के प्रति कृतज्ञता से भर उठे। उर्वशी तो उनसे प्यार भी करने लगी थी। उसे न केवल उनके शौर्य ने आकृष्ट किया था, अपितु उनके अतुल रूप ने भी उसके मन को मोह लिया था। उधर पुरूरवा भी उर्वशी के अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठे।

राजधानी लौटने पर, राजा पहले की तरह राज-कार्य में लग गए, किन्तु उनका मन काम में नहीं लगता था। उनका हृदय उर्वशी से मिलने के लिए छटपटाता रहता था। उसके साथ जो थोड़ा-सा समय उन्होंने गुज़ारा था, उसकी मधुर स्मृति उनके विचारों को हर दम घेरे रहती। उनके दिन का चैन और रातों की नींद हराम हो गई। उधर उनकी चतुर रानी औशीनरी को यह भांपने में देर नहीं लगी कि दाल में कुछ काला है। रानी को विश्वास था कि विदूषक, जो राजा का केवल मनोविनोद ही नहीं करता, अपितु अन्तरंग मित्र भी है, इस भेद को अवश्य जानता होगा। उसने अपनी निजी

परिचारिका निपुणिका से कहा कि वह किसी तरह विदूषक से राजा के मन की बात का पता लगाए। निपुणिका चतुर तो थी ही, उसने विदूषक को फुसला कर राजा की उर्वशी से प्रेम की बात मालूम कर ली और रानी को उस की सूचना दे दी।

एक दिन उर्वशी के विरह ने राजा को अधिक व्याकुल कर रखा था। मन को बहलाने के लिए वे अभिन्न मित्र विदूषक को साथ ले, प्रमद-वन में एक लता-कुञ्ज की शीतल छाया में जा बैठे। वहां वे हृदय के बोझ को हल्का करने के लिए, अपनी मनोव्यथा का विस्तार से वर्णन करने लगे। उन्होंने विदूषक को बतलाया कि उनके लिए विरह की अग्नि को और अधिक सहन करना कठिन हो गया है। विदूषक ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि चूंकि उर्वशी भी उनसे प्रेम करती है, वह भी उनसे मिलने के लिए लालायित होगी।

उधर स्वर्ग में उर्वशी पुरूरवा से मिलने के लिए सचमुच बहुत व्याकुल थी। वह अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा को साथ ले पृथ्वी पर उतरी और राजा को ढूंढते हुए प्रमद-वन में आ पहुंची। उन्होंने देखा कि राजा पुरूरवा और विदूषक गहन वार्तालाप में संलग्न हैं और जब उर्वशी को मालूम हुआ कि वे उसी के विषय में बातचीत कर रहे हैं और राजा भी उसके वियोग में दु:खी हैं तो उनके मन को बहुत कुछ राहत मिली।

उर्वशी और चित्रलेखा दैवीसत्ता से सम्पन्न थीं और उनमें इच्छानुसार अदृश्य होने की क्षमता थी। वे स्वर्ग से अदृश्य रूप में ही आई थीं, अतः राजा तथा विदूषक उन्हें देख नहीं पा रहे थे। अपने आप को प्रकट करने से पहले उर्वशी ने प्रेम-निवेदन करना चाहा। उसने एक भोज-पत्र लिया, उस पर राजा से अपने प्यार की बात लिखी, लपेटा और उन दोनों के सम्मुख भूमि पर फेंक दिया। जब राजा ने उसे पढ़ा तो रोमाञ्चित हो उठे। चूंकि उनके हाथ

रहे थे तो उन्होंने कुछ अप्सराओं के चिल्लाने का स्वर सुना। राजा ने सारथी को रथ की गति धीमी करने के लिए कहा ताकि वे उनकी विपत्ति का कारण जान सकें। जब उन्हें मालूम हुआ कि एक राक्षस उनकी सर्वाधिक सुन्दर सहचरी उर्वशी तथा उसकी अंतरंग सखी चित्रलेखा को बलपूर्वक उठा कर ले गया है, तो राजा ने तुरन्त उसका पीछा किया। उन्होंने शीघ्र हीं राक्षस को जा पकड़ा। असुर, राजा पुरूरवा की शक्ति की ताब न ला सका और उसने मामूली संघर्ष के बाद घुटने टेक दिये। राजा दोनों अप्सराओं को छुड़ा, चित्रकूट पर्वत पर ले आए जहां उन्होंने अन्य अप्सराओं को प्रतीक्षा करने के लिए कहा था।

जब अप्सराओं की दोनों प्रिय सखियां सुरक्षित लौट आईं, तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। राजा ने उनकी सखियों को बचाने के लिए जो स्वेच्छा से सहायता की थी, उसकी अप्सराओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उनके मन राजा के प्रति कृतज्ञता से भर उठे। उर्वशी तो उनसे प्यार भी करने लगी थी। उसे न केवल उनके शौर्य ने आकृष्ट किया था, अपितु उनके अतुल रूप ने भी उसके मन को मोह लिया था। उधर पुरूरवा भी उर्वशी के अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठे।

राजधानी लौटने पर, राजा पहले की तरह राज-कार्य में लग गए, किन्तु उनका मन काम में नहीं लगता था। उनका हृदय उर्वशी से मिलने के लिए छटपटाता रहता था। उसके साथ जो थोड़ा-सा समय उन्होंने गुज़ारा था, उसकी मधुर स्मृति उनके विचारों को हर दम घेरे रहती। उनके दिन का चैन और रातों की नींद हराम हो गई। उधर उनकी चतुर रानी औशीनरी को यह भांपने में देर नहीं लगी कि दाल में कुछ काला है। रानी को विश्वास था कि विदूषक जो राजा का केवल मनोविनोद ही नहीं करता, अपितु अन्तरंग मित्र भी है, इस भेद को अवश्य जानता होगा। उसने अपनी निजी

परिचारिका निपुणिका से कहा कि वह किसी तरह विदूषक से राजा के मन की बात का पता लगाए। निपुणिका चतुर तो थी ही, उसने विदूषक को फुसला कर राजा की उर्वशी से प्रेम की बात मालूम कर ली और रानी को उस की सूचना दे दी।

एक दिन उर्वशी के विरह ने राजा को अधिक व्याकुल कर रखा था। मन को बहलाने के लिए वे अभिन्न मित्र विदूषक को साथ ले, प्रमद-वन में एक लता-कुन्ज की शीतल छाया में जा बैठे। वहां वे हृदय के बोझ को हल्का करने के लिए, अपनी मनोव्यथा का विस्तार से वर्णन करने लगे। उन्होंने विदूषक को बतलाया कि उनके लिए विरह की अग्नि को और अधिक सहन करना कठिन हो गया है। विदूषक ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि चूंकि उर्वशी भी उनसे प्रेम करती है, वह भी उनसे मिलने के लिए लालायित होगी।

उधर स्वर्ग में उर्वशी पुरूरवा से मिलने के लिए सचमुच बहुत व्याकुल थी। वह अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा को साथ ले पृथ्वी पर उतरी और राजा को ढूंढते हुए प्रमद-वन में आ पहुंची। उन्होंने देखा कि राजा पुरूरवा और विदूषक गहन वार्तालाप में संलग्न हैं और जब उर्वशी को मालूम हुआ कि वे उसी के विषय में बातचीत कर रहे हैं और राजा भी उसके वियोग में दुःखी हैं तो उसके मन को बहुत कुछ राहत मिली।

उर्वशी और चित्रलेखा दैवीसत्ता से सम्पन्न थीं और उनमें इच्छानुसार अदृश्य होने की क्षमता थी। वे स्वर्ग से अदृश्य रूप में ही आई थीं, अतः राजा तथा विदूषक उन्हें देख नहीं पा रहे थे। अपने आप को प्रकट करने से पहले उर्वशी ने प्रेम-निवेदन करना चाहा। उसने एक भोज-पत्र लिया, उस पर राजा से अपने प्यार की बात लिखी, लपेटा और उन दोनों के सम्मुख भूमि पर फेंक दिया। जब राजा ने उसे पढ़ा तो रोमाञ्चित हो उठे। [illegible] हाथ

पसीने से गीले हो गए थे, भोज-पत्र पर लिखे अक्षर मन्द पड़ने लगे। अतः राजा ने वह पत्र थोड़ी देर के लिए विदूषक के हाथ में दे दिया।

उसके तुरन्त बाद चित्रलेखा और उर्वशी प्रकट हो गई। राजा को प्रणाम कर चित्रलेखा एक ओर खड़ी हो गई। राजा ने उर्वशी का हाथ पकड़ लिया और उसे बिठाने के लिए एक आरामदेह स्थान की ओर बढ़े ही थे कि देवराज इन्द्र के दूत का स्वर आकाश में गूंज उठा—

''ओ चित्रलेखा! उर्वशी को शीघ्र ही इन्द्रपुरी में ले आओ। देवराज इन्द्र ने प्रेम के उन नाट्य-दृश्यों को देखने की इच्छा प्रकट की है जिनमें अभिनय के लिए भरत मुनि ने उर्वशी को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया है।''

उर्वशी के पास अपने स्वामी की आज्ञा-पालन के सिवाय कोई चारा न था। महाराज पुरूरवा भी अपने मित्र देवराज इन्द्र का विशेष सम्मान करते थे। अतः वे उर्वशी को रोकना नहीं चाहते थे। उर्वशी चित्रलेखा के साथ तुरन्त वहां से चली गई। राजा मन मसोस कर रह गए।

सहसा राजा को भोज-पत्र का ध्यान आया जिस पर उर्वशी ने राजा के प्रति प्रेम अभिव्यक्त किया था और जो उन्होंने विदूषक को पकड़ाया था। किन्तु विदूषक के अब दोनों हाथ खाली थे। उर्वशी के आकस्मिक आगमन से वह हड़बड़ा गया था और वह पत्र उसके हाथ से कहीं गिर गया था। राजा को इससे बड़ी निराशा हुई।

जब राजा, उर्वशी और चित्रलेखा से बात कर रहे थे, रानी औशीनरी, पति से मिलने उसी समय प्रमद-वन में प्रविष्ट हुई थी। उसकी दासी निपुणिका भी उसके साथ थी। उधर जब विदूषक के हाथ से भोज-पत्र छूटा तो वह हवा के तेज़ झोंके से उड़ता हुआ, रानी के पास आ गिरा। रानी ने उठा कर उसे पढ़ा, तो सन्नाटे में आ
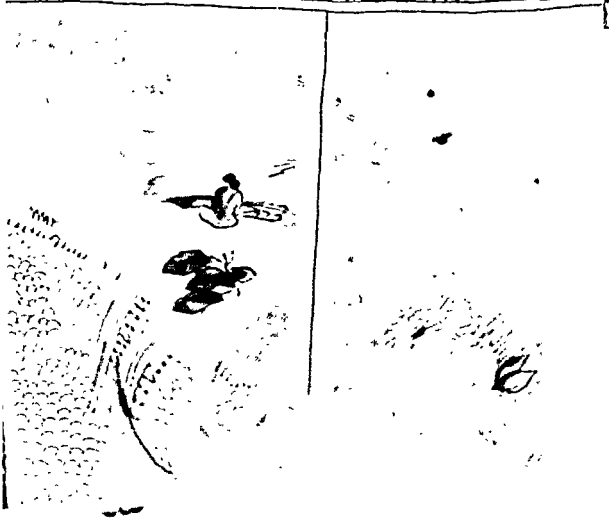
गई। निपुणिका ने राजा और अप्सरा के प्रेम की जो बात बताई थी, अब उसकी पुष्टि हो गई। रानी तीव्र गति से लता-मण्डप की ओर बढ़ी। जब वह वहां पहुंची तो राजा भोज-पत्र के खो जाने के कारण बेचैन थे और विदूषक उसे ढूंढने के लिए उछल-कूद कर रहा था। रानी ने राजा से कहा कि वे पत्र के लिए अधिक परेशान न हों और यह कह कर भोज-पत्र उन के हाथ में दे दिया। राजा रानी के व्यंग से सिटपिटा गए। उन्होंने कितने ही बहाने बनाए किन्तु रानी को सन्तुष्ट करना आसान नहीं था। आखिरकार उन्होंने क्षमा-याचना में ही अपनी भलाई समझी और वे उसके चरणों में लोट गए। रानी का क्रोध फिर भी शान्त नहीं हुआ और वह झुंझला कर, वहां से चली गई। चूंकि राजा औंधे मुंह लेटे थे, उन्हें उसके वहां से चले जाने का पता नहीं लगा। तब विदूषक ने उन्हें उठने के लिए कहा क्योंकि रानी अब वहां नहीं थी।

इसी बीच उर्वशी स्वर्ग में पहुंच गई थी। व्यास मुनि ने जिस नाट्य-प्रदर्शन की व्यवस्था की थी उसमें उर्वशी को लक्ष्मी की भूमिका निभानी थी। एक अन्य पात्र द्वारा पूछे जाने पर कि वह अपना दिल किसे दे बैठी है, उसने उत्तर देना था 'पुरुषोत्तम को' किन्तु उसके मुख से अनायास निकल गया 'पुरूरवा को'। इससे व्यास मुनि क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने उर्वशी को शाप दिया—"तुम स्वर्ग में अपनी पदवी से वञ्चित हो जाओगी।" उर्वशी अनजाने में हुई भूल से स्वयं बहुत दुःखी थी। इन्द्र को उसकी दीन दशा पर दया आ गई। राजा पुरूरवा का भी वे सम्मान करते थे और उन्हें अप्सरा से उनके प्रेम का भी पता था। अतः उन्होंने मुनि के शाप में कुछ छूट देते हुए कहा—"स्वर्ग से अपनी पदवी से च्युत होने पर तुम तब तक राजा पुरूरवा के साथ पृथ्वी पर रह सकती हो जब तक वे तुम से पुत्र प्राप्त कर उसका मुख नहीं देख लेते।"

उर्वशी इससे बड़े उपकार की स्वप्न में भी आशा नहीं कर सकती थी!

रानी औशीनरी ने प्रमद-वन में पति के प्रति जो व्यवहार किया था, उसके लिए उसे खेद होने लगा था। उसने महसूस किया कि उनकी क्षमा-याचना की उपेक्षा कर, उसने मर्यादा-सीमा का उल्लंघन किया है। उसने निश्चय किया कि वह पति को प्रसन्न करने के लिए उपवास करेगी। उसने राजा के पास सन्देश भेजा कि वे, उपवास को समाप्त करने के समय मणि-महल में दर्शन देकर उसे कृतार्थ करें।

राजा तो रानी से सुलह-सफाई के लिए पहले से ही तैयार थे। उन्होंने रानी की प्रार्थना को तुरन्त स्वीकार कर लिया और अपने अभिन्न मित्र विदूषक को साथ ले, समय से पहले ही मणि-महल पहुंच गए। वहां विदूषक को अकेला पा कर राजा, प्रियतमा उर्वशी के सौन्दर्य तथा उससे मिलन की उत्कण्ठा का वर्णन करने के लिए लालायित हो उठे। वे अभी बातचीत कर ही रहे थे कि रानी मणि-महल में आ पहुंची और उन्हें अपनी बात बीच में ही रोकनी पड़ी। औशीनरी, श्वेत वस्त्रों में सौजन्य एवं लालित्य की मूर्ति दीख पड़ती थी। उसकी सौम्य आकृति से स्पष्ट था कि अब उसे राजा तथा उर्वशी के प्रेम-सम्बन्ध पर आपत्ति नहीं है। वास्तव में वह राजा को सन्तुष्ट करने के लिए कुछ भी करने को तैयार थी। नियत समय पर उसने उपवास समाप्त किया और उस अवसर पर यहां तक कहा कि यदि राजा उर्वशी को दूसरी पत्नी के रूप में अपनाना चाहें तो उसका भी वह सहर्ष समर्थन करेगी।

संयोगवश उर्वशी और चित्रलेखा उसी समय मणि-महल पहुंची थीं जब राजा पुरूरवा और विदूषक उस में प्रविष्ट हुए थे। अतः उन्होंने अदृश्य रह कर वहां की सारी कार्यवाही देखी थी। उर्वशी ने जब सुना कि राजा उससे मिलने के लिए उत्कण्ठित हैं तो वह आनन्द-विभोर हो उठी थी और जब रानी ने राजा के साथ उसके विवाह के समर्थन की बात कही तो वह खुशी से झूम उठी।

रानी अपना व्रत पूरा कर महल को लौट गई। तभी अप्सराओं ने अपने आप को प्रकट किया। अपनी प्रियतमा को अकस्मात वहां देख, राजा का हृदय अपूर्व प्रसन्नता से भर उठा। यह राजा का परम सौभाग्य था कि इतनी सुखद घटनाएं एक साथ घटीं। किन्तु चित्रलेखा वहां अधिक देर तक रुक नहीं सकती थी क्योंकि उसे ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में सूर्य देवता की सेवा में उपस्थित होना था। उसने राजा तथा अन्तरंग सखी से विदा ली किन्तु प्रस्थान करने से पहले उसने आशा व्यक्त की कि महाराज ऐसी चेष्टा करेंगे जिससे उसकी सखी को स्वर्ग के सुखों से वञ्चित होने का कभी पछतावा नहीं होगा। पुरूरवा उर्वशी को सभी स्वर्गीय सुखों को उपलब्ध करवाने का आश्वासन तो नहीं दे सकते थे किन्तु उन्होंने चित्रलेखा को वचन दिया कि उसकी सखी को वे सभी सुविधाएं मिलेंगी जो मनुष्यों को उपलब्ध करवाई जा सकती हैं।

उसके शीघ्र बाद पुरूरवा और उर्वशी का विवाह हो गया। उन्होंने बहुत वर्षो तक दाम्पत्य जीवन के सुखों को भोगा। इसी दौरान राजा ने नौमिषेय यज्ञ का अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् उन्होंने राज्य का कार्य-भार मन्त्री-मण्डल को सौंप दिया और स्वयं, उर्वशी के साथ आनन्द मनाने, हिमालय पर्वत पर गन्धमादन वन को चले गए। उन्होंने जो समय वहां व्यतीत किया वह निरन्तर आनन्द में परिपूर्ण सुखद स्वप्न के समान था। किन्तु आनन्द का इतना आधिक्य शायद विधाता भी सहन नहीं कर सके। एक दिन, राजा ने मन्दाकिनी नदी के तट पर, एक विद्याधरी को देखा। वह इतनी सुन्दर थी कि पुरूरवा उसे एकटक देखते ही रह गए। उर्वशी इसे सहन न कर सकी। वह आपे से बाहर हो गई। राजा ने उसे मनाने की बहुत चेष्टा की किन्तु सब निष्फल। ईर्ष्या जनित क्रोध के आवेश में वह राजा को छोड़, वहां से चली गई। उसे इतना भी होश नहीं था कि वह कहां जा रही है। दुर्भाग्य से, उसी बेसुधी की हालत

में वह कार्तिकेय के आश्रम में घुस गई तथा जंगल के किनारे उगती हुई एक लता में परिणत हो गई।

उधर राजा ने अपनी प्रियतमा को खोजने में कोई कसर नहीं छोड़ी किन्तु सब व्यर्थ। उर्वशी के लोप हो जाने से उनके प्रेममय हृदय को मर्म-भेदी चोट लगी थी। असह्य मनोवेदना के कारण वे सुध-बुध खो बैठे। वे कभी मोर, कभी कोयल तथा कभी हंस से पूछते कि तुमने कहीं मेरी प्रिया को तो नहीं देखा। वे कभी नदियों तथा पर्वतों से उसका पता ठिकाना जानने की चेष्टा करते।

चट्टानों के बीच घूमते हुए, एक दिन उन्होंने एक पत्थर की दरार में एक देदीप्यमान मणि देखी। उसके चमकते हुए लाल रंग से आकर्षित हो उन्होंने उसे खींच कर बाहर निकाल लिया। उन्हें लगा कि यह मणि उनकी प्रेयसी की घनी श्यामल अलकों में खूब शोभा देती, किन्तु चूंकि वे उससे पुनर्मिलन की आशा खो बैठे थे, उन्होंने उस मणि को अपने लिए व्यर्थ समझा। यह सोचकर वे उसे फेंकने जा ही रहे थे कि उन्हें एक रहस्यमय आवाज़ सुनाई दी– "रख लो, वत्स! इसे सम्भाल कर रख लो। यह प्रिय व्यक्ति से संगम कराने वाली मणि है जो पार्वती के चरणों की द्युति से उपजी हुई है। यदि इसे पास रखोगे तो तुम्हें भी शीघ्र ही अपनी प्रेयसी से मिलवा देगी।"

इससे राजा के हृदय में आशा की नई किरण चमक उठी। उन्होंने मणि को कस कर पकड़ लिया और आगे बढ़ते गए। जब वे जंगल के किनारे उगती हुई एक लता के पास से गुज़रे, तो उन्हें लगा कि उनके शरीर में नवजीवन का संचार होने लगा है। वे थोड़ी देर के लिए वहीं रुक गए। लता वर्षा के जल से आर्द्र तथा पुष्प-विहीन थी। राजा को वह अपनी प्रिया जैसी लगी, जिसके होंठ अश्रुओं के निरन्तर बहने से गीले हो गए थे तथा जिसने सभी आभूषणों को त्याग दिया था। उसका मन चाहा कि वे लता को गले लगा लें। इसके लिए ज्योंही वे आगे बढ़े, लता, उर्वशी में परिवर्तित हो गई।

उर्वशी के अप्रत्याशित प्रकटन की उत्तेजना से राजा बेहोश हो गए। जब उन्हें होश आया तो वे उर्वशी की बाहों में थे। उर्वशी राजा के आचरण पर भली भांति सोच-विचार किए बिना ही उन्हें छोड़ कर चली आई थी। वह स्वयं उस के लिए अत्यन्त अनुतप्त थी। उसने अपने व्यवहार के लिए राजा से क्षमा मांगी। उसने लता में रूपान्तरित होने का कारण भी बताया। प्राचीन काल में, कुमार कार्तिकेय ने अविवाहित जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया था। उस का आश्रम गन्धमादन वन की सीमा के साथ लगता था। आश्रम में प्रवेश करते समय उन्होंने उसमें स्त्रियों के प्रवेश की मनाही कर दी थी। साथ ही यह शर्त भी रख दी थी कि यदि किसी स्त्री ने इस नियम का उल्लंघन किया तो वह लता में परिणत हो जाएगी। किन्तु इसमें एक छूट की व्यवस्था भी कर दी गई थी और वह यह कि पार्वती के चरणों की दीप्ति से उपजी मणि के प्रस्तुत करने पर अभिशप्त स्त्री, मौलिक रूप को प्राप्त कर लेगी। इसी छूट ने राजा की सहायता की थी। प्रभु की अनन्य कृपा से उन्हें वह मणि मिल गई थी। तभी वे उन्हें अपनी प्रिय पत्नी को पुनः प्राप्त करने में सफल हुए थे।

चूंकि राजा को अपने राज्य को छोड़े अत्यधिक समय व्यतीत हो गया था, वे उर्वशी के साथ तुरन्त राजधानी की ओर लौट गए। पुरूरवा की प्रजा ने उनका स्नेहपूर्वक स्वागत किया। राजा भी दुगुने उत्साह और लग्न से राज-काज में लग गए। उन्होंने निष्पक्षता, न्याय-प्रियता तथा लोक-हित के कार्यों से लोगों का मन मोह लिया।

जो मणि पुरूरवा और उनकी प्राण प्रिय पत्नी के संगम का साधन बनी थी, वह अब उनके लिए अनमोल रत्न थी। एक दिन एक गीध, उस चमकती हुई लाल मणि को मांस का टुकड़ा समझ, उस पर झपटा और चोंच में दबा कर ले भागा। राजा को तत्काल सूचना

दी गई और वे तुरन्त अपने कक्ष से बाहर निकल आए। उस गीध को मार गिराने के लिए ज्योंही राजा ने धनुष-बाण हाथ में लिया, वह उनकी दृष्टि से ओझल हो गया। तब राजा ने नगर में घोषणा करवा दी कि वह गीध जहां भी हो, लोग उसे मार कर, मणि राजा को लौटा दें।

अगले दिन प्रातः वह पक्षी, पृथ्वी पर मरा हुआ पाया गया। उस की छाती एक बाण से बिंध गई थी। मणि अब भी उसकी चोंच में थी। लोगों ने उसे ले कर राजा के पास पहुंचा दिया। राजा के पूछने पर, पता लगा कि जिस बाण से गीध आहत हो कर भूमि पर गिरा है, उस पर, 'पुरूरवा तथा उर्वशी का पुत्र—आयु' के शब्द अंकित हैं। यह सुनकर राजा आश्चर्य-चकित हो गए। यह सच है कि बहुत वर्ष पहले, राजा को उर्वशी के चेहरे के कुछ पीला पड़ने तथा अंगों के क्षीण होने का आभास हुआ था किन्तु उसके शीघ्र बाद ही वे द्वादश-वर्षीय नैमिषेय यज्ञ में संलग्न हो गए थे, जिसके दौरान उन्हें पत्नी से अलग रहना था। अतः वे उर्वशी के गर्भ के विकास और पुत्र के जन्म से अनभिज्ञ थे। किन्तु उर्वशी ने इस महत्त्वपूर्ण घटना को राजा से छिपाया क्यों था?

अभी राजा इस बात को सोच ही रहे थे कि एक तपस्विनी और एक लड़के को उनकी सेवा में उपस्थित किया गया। तपस्विनी ने राजा को सूचित किया कि वह लड़का उर्वशी का पुत्र है और उर्वशी ने बालक को जन्म के तुरन्त बाद उसे सौंप दिया था। इसकी शिक्षा-दीक्षा भगवान् च्यवन ऋषि के पास हुई है और उन्होंने इसे धनुर्विद्या में पारंगत बना दिया है। तपस्विनी ने राजा को यह भी बताया कि जब कुमार ने एक गीध को, चोंच में मांस का टुकड़ा दबाए आकाश में ऊंचे उड़ते देखा तो उसे बाण से नीचे मार गिराया। चूंकि इनकी यह क्रिया आश्रम की परम्परा के विरुद्ध थी,

अतः महर्षि च्यवन ने आदेश दिया कि इस क्षत्रिय कुमार को तुरन्त इसके माता-पिता के पास लौटा दिया जाए।

राजा और बालक के रूप-रंग में विलक्षण समता होने के कारण, तपस्विनी की बात को झुठलाया नहीं जा सकता था। पुरूरवा अनायास ही पुत्र के प्रति आकृष्ट हो उठे और उन्होंने उसे गले से लगा लिया। इसी बीच राजा ने उर्वशी को भी बुला भेजा। वह भी तुरन्त आ पहुंची। दिव्य रूप से सम्पन्न युवा पुत्र को देख वह भाव-विभोर हो गई।

तपस्विनी शीघ्र ही आश्रम को लौट गई। उर्वशी ने तब जाकर राजा को बताया कि उसने गर्भवती होने तथा बच्चे को जन्म देने की बात राजा पर क्यों प्रकट नहीं की थी। देवराज इन्द्र ने, उर्वशी को पृथ्वी पर पुरूरवा की पत्नी बन कर रहने की अनुमति देते समय यह शर्त भी लगा दी थी कि जब राजा पुत्र का मुख देख लेंगे तो अप्सरा इन्द्रपुरी को लौट आएगी। उर्वशी चाहती थी कि वह अधिक-से-अधिक समय पुरूरवा के साथ व्यतीत करे, अतः उसने गर्भ-धारण की बात राजा से छिपा ली थी और पुत्र-जन्म के बाद, उसके पालन-पोषण का भार,महर्षि च्यवन के आश्रम में रहने वाले तपस्वियों को सौंप आई थी।

भाग्य के खेल भी कितने निराले होते हैं! अभी-अभी पुत्र से मिल कर, पुरूरवा और उर्वशी गद्‌गद् हो उठे थे और अब उन्हें एक-दूसरे की विरह-व्यथा से अभिशप्त जीवन को जीने के सिवा कोई मार्ग सूझ नहीं रहा था। राजा प्राण-प्रिया के अनिवार्य वियोग की सम्भावना से किसी तरह भी समझौता नहीं कर पा रहे थे। किन्तु देवराज इन्द्र के आदेश का उल्लंघन भी नहीं किया जा सकता था। राजा ने निश्चय कर लिया कि उर्वशी के चले जाने के बाद, राज-कार्य का भार पुत्र को सौंप, वन में चले जाएंगे।

उधर देवराज ने दिव्य-शक्ति से मालूम कर लिया कि उर्वशी के स्वर्ग लौटने पर, राजा पुरूरवा राज-गद्दी त्याग, वनों की शरण लेंगे। इन्द्र, असुरों के विरुद्ध युद्धों में, अक्सर पुरूरवा की सहायता लेते थे। उनके लिए राजा का यह सहयोग बहुमूल्य था और राजा के वनों मे चले जाने पर, वे उससे वञ्चित नहीं होना चाहते थे। अतः उन्होंने पिछले आदेश को वापिस ले लिया और उर्वशी को जन्म भर अपने पति और पुत्र के साथ रहने की अनुमति दे दी।

जब नारद मुनि, इन्द्र का यह सन्देश ले कर राजा के पास पहुंचे तो सब ओर खुशी की लहर दौड़ गई। पुरूरवा तथा उर्वशी आनन्द-विभोर हो गए। उन्होंने शेष जीवन बड़े आनन्द से व्यतीत किया।

□□

6. मेघदूत

'मेघदूत' अपेक्षाकृत एक लघु गीतिकाव्य है जिस में केवल 121 पद्य हैं। इसमें एक यक्ष की अपनी पत्नी से बिछुड़ने और विरह-व्यथा से पीड़ित होकर, उसे मेघ द्वारा सन्देश भेजने की काल्पनिक कथा का वर्णन है। इसमें कवि ने विरहाग्नि से व्यथित दम्पति की मनोवेदना का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रसिद्ध भारतीय विद्वान एवं समालोचक आर०डी० कारमर्कर कहते है, "मेघदूत सर्वसम्मति से कालिदास की श्रेष्ठ रचनाओं में गिना जाता है। आकार में छोटा होने पर भी, भाषा के प्रवाह और भावों की सुकुमारता के कारण यह एक अनूठी रचना बन गई है। इस का कथानक इतना सुन्दर है कि वह पाठक के मन को सहज ही मोह लेता है।"

हिमालय पर्वत की ऊंची श्रेणियों में अलकापुरी नाम की नगरी बसी हुई थी। यक्षों के राजा कुबेर उस पर राज करते थे। कुबेर ने एक यक्ष को अपनी निजी सेवा में नियुक्त कर रखा था। वह यक्ष अपनी पत्नी को बहुत अधिक प्यार करता था। रात-दिन वह उसी के विचारों में खोया रहता। ऐसी ही बेसुधी की स्थिति में उसने एक बार अपने कर्त्तव्य का ठीक तरह से पालन नहीं किया। इस पर, राजा ने क्रोध में आ कर उसे एक वर्ष के लिए देश से निकाल दिया। केवल इतना ही नहीं, उसे अपनी प्रिय पत्नी को साथ ले जाने की अनुमति भी नहीं दी गई। इस प्रकार यक्ष को एक वर्ष अपनी प्रियतमा के विरह में गुज़ारना पड़ा। उसने यह समय, दक्षिण भारत में रामगिरि के आश्रम में गुज़ारने का निश्चय किया। कहते हैं कि, प्राचीन काल में राम ने

अपना निर्वासन काल, सीता और लक्ष्मण के साथ, यहीं व्यतीत किया था।

यक्ष को अपनी स्त्री, प्राणों से अधिक प्यारी थी। उसके विरह की तीव्र व्यथा से उसका शरीर इतना क्षीण हो गया कि उसके बाजुओं के कंगन फिसल कर नीचे गिरने लगे। न उसे दिन को आराम था, न रात को चैन। इस तरह रोते-कलपते उसने किसी तरह आठ महीने तो विता दिये, किन्तु जव वर्षा ऋतु आई तो पत्नी के विना उसका जीना दूभर हो गया। आषाढ़ मास के पहले ही दिन जब रसिक यक्ष ने आकाश में उमड़ते श्याम वर्ण के एक विशाल मेघ को देखा तो उसके हृदय में मधुर स्मृतियों की बाढ़-सी आ गई। उसे पिछली वर्षा के उन सुखद दिनों की याद हो आई, जो उसने अपनी प्रियतमा के संग व्यतीत किये थे। काश, इस बार भी वह उस के पास होती। किन्तु ऐसा हो पाना सम्भव नहीं था। उसने सोचा, क्यों न अपनी प्रियतमा के पास एक मधुर संदेश ही भेज दूं। उसे विश्वास था कि उसके कुशल-क्षेम का समाचार पाकर उसकी पत्नी को बड़ी सांत्वना मिलेगी। प्रेम और विरह में बावरे यक्ष को लगा कि चूंकि मेघ को कहीं भी पहुंचने में कठिनाई नहीं होती, वह उसके संदेश को सहज ही अलकापुरी में उसकी पत्नी तक पहुंचा सकेगा। भला सोचिए, कहां तो धुंए, आग, जल तथा हवा के सम्मिश्रण से निर्मित चेतनाशून्य बादल और कहां वह संदेश जिसे केवल चेतन और चतुर लोग ही ला-ले जा सकते हैं! किन्तु प्रियतमा के प्रेम में पागल यक्ष को इतना होश कहां था कि वह यह सब सोच सके।

यक्ष ने सब से पहले मेघ की फूलों से अर्चना की और फिर नम्रता से उसे यूं सम्बोधित किया, "तुम भूमि को हरी-भरी और उपजाऊ बनाते हो और इस प्रकार लोगों के दुःख दूर करते हो। मैं भी पत्नी से बिछुड़ कर बड़ी मुसीबत में हूं। यदि तुम मेरे संदेश को उस तक पहुंचा दो, तो मैं इसे तुम्हारा बड़ा उपकार मानूंगा। इस कार्य को सम्पन्न

करने के लिए, तुम्हें यक्षों की नगरी अलकापुरी जाना होगा। चूंकि कोई भी स्थान तुम्हारे लिए अगम्य नहीं है, तुम्हें मेरी प्रियतमा तक पहुंचने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी।

किन्तु संदेश देने से पहले मैं चाहूंगा कि तुम मुझसे अलकापुरी तक पहुंचने का मार्ग अच्छी तरह समझ लो। जब तुम सामने के पर्वत को लांघ जाओगे, तो तुम्हें नर्मदा नदी के स्रोत से लेकर विन्ध्याचल तक फैला हुआ मालदेश मिलेगा। चूंकि अच्छी फसल का होना तुम पर निर्भर है, वहां के किसानों की भोली स्त्रियां तुम्हारा बड़े चाव से स्वागत करेंगी। उन्हें निराश मत करना। उनके जोते हुए खेतों को जल से भर देना। फिर थोड़ी दूर पश्चिम की ओर जाकर उत्तर की ओर मुड़ जाना। तुम शीघ्र ही आम्रकूट पर्वत पर पहुंच जाओगे। जब तुम उसके वनों में मूसलाधार वर्षा कर चुकोगे तो वह तुम्हें अपने शिखर पर विश्राम करने के लिए आमन्त्रित करेगा। मूसलाधार वर्षा करने के बाद तुम्हारा शरीर हल्का हो जाएगा और तुम्हारी चाल में चुस्ती आ जाएगी। कुछ आगे बढ़ कर तुम्हें रेवा नदी मिलेगी जो विन्ध्याचल के पठार पर कई धाराओं में विभाजित हो कर बह रही होगी। दूर से ऐसा लगेगा मानों हाथी पर भभूति से चित्रकारी की गई हो। रेवा का जल पी कर ही तुम आगे बढ़ना। थोड़ा आगे जाकर तुम दशार्ण देश में पहुंच जाओगे। विदिशा यहां की राजधानी है। इस देश में केवड़े के विकसित कुसुमों की बहुतायत के कारण उपवन उजले दिखाई देंगे। गांवों में मन्दिर, पक्षियों के नीड़ो से भरे होंगे, और वनों में जामुन के वृक्ष पके हुए रसीले फलों से लदे होंगे। इसके बाद तुम्हारे रास्ते में वेत्रवती नदी आएगी। इसके तटों पर खिली हुई जूही की कलियों को सींचते हुए तथा मालिनों से कुछ जान-पहचान करते हुए तुम आगे बढ़ जाना।

मैं निस्सन्देह इस बात के लिए उत्सुक हूं कि तुम जितनी जल्दी हो सके, अलकापुरी पहुंच जाओ। किन्तु मैं नहीं चाहूंगा कि तुम

उज्जयिनी के राजभवनों के मनोरम दृश्यों से वंचित रह जाओ जो तुम्हारे मार्ग से थोड़ा हट कर हैं। उज्जयिनी अवन्ति के राज्य में क्षिप्रा नदी के तट पर बसी एक सुन्दर नगरी है। धन-धान्य से परिपूर्ण वह नगरी बहुमूल्य मुक्ता-मणियों के लिए विख्यात है। प्राचीन काल में राजा चन्द्रप्रद्योत वहां राज करता था। वासवदत्ता उसकी लाडली बेटी थी। वत्स का राजा उदयन उस कन्या को उसकी सहमति से यहां से हर कर ले गया था। उज्जयिनी के बड़े-बूढ़े बाहर से आए सम्बन्धियों को आज भी, उदयन और वासवदत्ता के प्रेम की कथा बड़े चाव से सुनाते हैं। इस नगर में मयूर पक्षियों की संख्या भी अधिक है। वे बड़ी उत्कण्ठा से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। जब तुम वहां पहुंचोगे तो वे मोहक नृत्यों से तुम्हारा स्वागत करेंगे।

उज्जयिनी छोड़ने से पहले तुम तीनों लोकों के स्वामी महादेव के पवित्र मन्दिर के दर्शनों के लिए जाना। यदि तुम दिन ढलने से पहले वहां पहुंच जाओ, तो सन्ध्या-काल की आरती में अवश्य सम्मिलित होना। तुम्हारा रह-रहकर गर्जना आरती में नगाड़े का काम देगा। भगवान् शिव में तुम्हारी इतनी भक्ति देखकर पार्वती बहुत प्रसन्न होंगी।

यदि तुम्हारी सहचरी, बिजली, निरन्तर चमकने के कारण थकावट महसूस करे, तो तुम नगर में किसी भी भवन की छत पर रात को विश्राम कर लेना। किन्तु दिन निकलते ही वहां से चल देना, क्योंकि सज्जन जब मित्रों का काम करने का बीड़ा उठाते हैं तो निर्धारित कर्त्तव्य के पालन में विलम्ब नहीं करते।

उज्जयिनी के बाद तुम गम्भीरा नदी पर जा पहुंचोगे। इस नदी का जल निर्मल तथा शीशे की तरह साफ है। तुम्हें उसमें अपने [illegible] शरीर की परछाई दीख पड़ेगी। गम्भीरा की अनदेखी [illegible] स्वच्छ एवं मधुर जल पीकर ही आगे देवगिरि पर्वत [illegible] वही पर्वत है जहां देवताओं की सेना के सेनापति

स्कन्द निवास करते हैं। उन्हें साधारण देवता न समझना। वे भगवान् शिव के पुत्र हैं और उनका जन्म इसीलिए हुआ था कि वे देवताओं की राक्षस तारक के अत्याचारों से रक्षा करें। उनकी पूजा करना और तभी चर्मणवती नदी की ओर बढ़ना। यह नदी अब भी लोगों को राजा रन्तिदेव की कीर्ति की याद दिलाती है। उसे सम्मान देकर तुम दशपुर जाओगे और वहां से कुरुक्षेत्र। यह स्थान कौरवों और पाण्डवों की घरेलू लड़ाई के लिए बदनाम है। यहां अर्जुन ने अपने शत्रुओं के विरुद्ध धनुर्विद्या में अनुपम कौशल का परिचय दिया था। यह कुरुक्षेत्र ही है जहां विख्यात नदी सरस्वती बहती है। बलराम, जो कौरवों और पाण्डवों दोनों से प्यार करते थे, इसी नदी का जल पीते थे। यदि तुम भी इसका जल पियोगे तो शरीर से सांवले होते हुए भी मन से निर्मल हो जाओगे।

कुरुक्षेत्र से तुम कनखल जाना। वहां तुम गंगा नदी देखोगे जो उच्च हिमालय पर्वत से नीचे आ रही है। इस पवित्र नदी ने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार किया था। इसमें तुम्हारा प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा प्रतीत होगा मानो प्रयाग में संगम होने से पहले ही यमुना नदी इसमें आ मिली हो। तत्पश्चात् तुम हिमालय के उस शिखर पर विश्राम करना जो गंगा का उद्गम-स्थल है तथा हिम से सदा ढका रहता है।

इस शिखर के निकट तुम्हें एक पाषाण-शिला पर शिव के चरण की छाप मिलेगी। सिद्ध इसकी पूजा करते हैं। तुम भी नम्र-भाव से झुक कर उसकी अर्चना करना, क्योंकि उसके दर्शन मात्र से ही, भक्तों को पापों से छुटकारा मिल जाता है और वे मृत्यु के पश्चात् शिव के निजी सेवकों की पदवी प्राप्त करते हैं।

इन पर्वतों पर जब खोखले बांस हवा से भर जाते हैं, तो उनसे मुरली के मधुर स्वरों जैसी ध्वनि निकलती है तथा उनसे स्वर मिला कर किन्नरों की स्त्रियां, त्रिपुर पर महादेव की विजय के मधुर गीत गाती हैं।

कभी-कभी प्रचण्ड तूफानों में, देवदार वृक्षों की परस्पर रगड़ के कारण पर्वतीय वनों में आग लग जाती है। यदि ऐसा हो तो तुम मूसलाधार वर्षा से दावानल को शान्त कर देना। भले लोग, अपने सभी साधनों से दीन-दःखियों की सहायता करते हैं।

हिमालय पर्वत में कई रमणीय एवं आकर्षक स्थल हैं। आगे बढ़ने से पहले उन्हें अवश्य देखना चाहिए। वहाँ से उत्तर की ओर जाने के लिए क्रौञ्च-रन्ध्र का मार्ग है। मानसरोवर की ओर जाते हुए हंस भी इसी पथ का अनुसरण करते हैं। वास्तव में, इस रास्ते को परशुराम ने क्रौञ्च पर्वत में एक ही तीर चला कर, बनाया था। इस असाधारण करतब ने उसकी स्मृति को अमर बना दिया है। यह संकीर्ण मार्ग तुम्हें कैलाश पर्वत पर पहुंचा देगा। यह वही पर्वत है जिसकी चोटियों को रावण ने चूर-चूर कर दिया था। हे मेघ! तुम पिसे हुए अंजन की तरह श्याम-वर्ण हो और कैलाश ताजा कटे हुए हाथी दांत की तरह सफेद। उस पर्वत पर पहुंचते ही तुम्हारी छवि निराली हो उठेगी। तुम बलराम के कन्धों पर पड़े काले चमकदार शाल की तरह आकर्षक दिखने लगोगे।

जब तुम कैलाश पर पहुंचोगे तो हो सकता है कि शिव, सांपों के गहने उतार, पार्वती के हाथों में हाथ डाले, चहल-कदमी कर रहे हों। उस समय वर्षा की झड़ी मत लगा देना अपितु सीढ़ियों का रूप धारण कर लेना ताकि उन दोनों को ऊपर चढ़ने में सुविधा हो जाए। हे मित्र! वहां पर रहने वाली अप्सराएं बड़ी नटखट हैं। वे तुम्हारे शरीर में मणि-मण्डित कंगन चुभो कर जल निकालेंगी और तुम ऐसे लगने लगोगे मानो जल का फुहारा हो। तुम कर्ण-भेदी गर्जन कर, उन्हें डरा कर भगा देना। तुम कल्पद्रुम के कोमल पत्तों को जोर-जोर से हिलाना और इस प्रकार नाना प्रकार की क्रीड़ाएं कर, इन्द्र के हाथी ऐरावत का दिल बहलाना। इन सब में तुम्हें बहुत अच्छा लगेगा। हां, वहां से चलने से पहले मानसरोवर का जल अवश्य पी लेना।

अलकापुरी, कैलाश पर्वत की घाटी में बसी हुई है। उसके बीचोंबीच बहती हुई गंगा नदी सुन्दर प्रतीत होती है। इस नगरी को पहचानने में तुम्हें तनिक भी कठिनाई नहीं होगी। अलकापुरी में कितनी ही गगनचुम्बी अट्टालिकाएं हैं। तुममें और उनमें कई समानताएं हैं। तुम्हारे साथ बिजली रहती है और उनमें सुन्दर ललनाओं का निवास है। तुम्हारे पास इन्द्र-धनुष है और उनमें जगह-जगह रंग-बिरंगे चित्र टंगे हैं। तुम गम्भीर गर्जन करते हो और उन भवनों में मृदंग के स्वर गूंजते रहते हैं। तुम्हारे भीतर जो नीला जल है, उससे तुम्हारा श्याम-सलोना रूप निखर उठा है और इन भवनों में जड़े हुए मुक्ता-मणि उन्हें विशेष कांति प्रदान करते हैं।

अलकापुरी में स्त्रियां फूलों और पत्तियों के आभूषण पहनती हैं। वहां ऐसे बहुत-से कुसुमित पेड़ हैं जो बारहों महीने फलते-फूलते हैं। वहां की रातें सदा पूर्णिमा के प्रकाश से चमकती रहती हैं तथा बहुत ही रमणीय प्रतीत होती हैं। नगर में रहने वाले यक्ष सदा जवान रहते हैं। उनकी आंखें केवल आनन्द के आंसुओं से ही सजल होती हैं और वे केवल प्रेम में ही रूठते हैं। अलकापुरी में स्त्रियां बहुत सुन्दर हैं और पुरुष बहुत रसिक। वहां योद्धा आभूषण नहीं पहनते, रणभूमि में लगे घावों के चिह्न ही उनके शरीरों के शृंगार हैं।

अलकापुरी में मेरा घर, राजा कुबेर के महल के उत्तर की ओर है। उसका मुख्य द्वार इन्द्रधनुष के समान सुन्दर है। तुम उसे दूर से ही देख लोगे। घर के निकट ही एक छोटा-सा कल्प वृक्ष है। मेरी पत्नी ने उसे पुत्र की तरह पाला है। वह फूलों के बोझ से इतना नीचे झुका हुआ है कि भूमि पर खड़े हो कर कोई भी उन्हें तोड़ सकता है। घर में घुसते ही तुम्हें एक बावड़ी मिलेगी। उसी के तट पर एक कृत्रिम टीला है। उसकी चोटी नीलमणि से बनी हुई है। केले के वृक्षों से घिरा होने के कारण उसकी छवि देखते ही बनती है। मेरी पत्नी को यह विशेष रूप से प्रिय है।

हे मित्र! यदि तुम इन चिह्नों को भली भांति याद रखोगे तो तुम्हें मेरा घर पहचानने में तनिक भी कठिनाई नहीं होगी। किन्तु मेरी अनुपस्थिति के कारण, तुम्हें वह बहुत सूना और उदास दिखाई देगा। वहां एक दुर्बल-सी युवती होगी जिसके होंठ लाल और कमर पतली है। उसके नयन भयभीत हरिणी के नयनों जैसे हैं। वही मेरी पत्नी है। वह अत्यन्त सुन्दर है मानो रचयिता के कौशल का एक बढ़िया उदाहरण हो। किन्तु विरह-जन्य व्यथा के कारण उसका शरीर क्षीण हो गया होगा। वह पाले से मारी कमलिनी की तरह लगती होगी। निरन्तर रोते रहने से उसके नेत्र सूज गए होंगे। क्या तुम सोच सकते हो कि तुम्हारे वहां पहुंचने पर वह क्या कर रही होगी? हो सकता है कि वह प्रभु से मेरे कल्याण के लिए प्रार्थना कर रही हो, या फिर मेरा चित्र बना रही हो अथवा विरह के शेष दिनों का हिसाब लगा रही हो।

प्रियतम से बिछुड़े व्यक्ति के लिए समय व्यतीत करना सचमुच बहुत कठिन होता है। घर के काम-काज में व्यस्त रहने के कारण वह दिन तो किसी न किसी तरह काट लेती होगी, किन्तु रातें अकेले गुज़ारना उसके लिए बहुत कठिन होता होगा। अतः यह अधिक अच्छा होगा कि तुम उसके पास रात को जाकर ही मेरा सुखद संदेश दो। यह भी सम्भव है कि उस समय वह उनींदी दशा में भूमि पर लेटी हो। हो सकता है कि वह स्वप्न देख रही हो और स्वप्न में मुझे ही गले लगाए हुए हो। तुम ज़ोर से गर्ज कर उसके सपने को तोड़ मत देना। वहीं खिड़की में बैठकर उसके जगने की प्रतीक्षा करना।

जब वह जाग जाए तो धीरे से बहुत ही मधुर वाणी में उससे कहना—"हे सौभाग्यवती! मैं तुम्हारे पति का प्रिय मित्र मेघ हूं। तुम्हारे पास उसका सन्देश ले कर आया हूं।" यह सुनते ही वह सजग हो उठेगी तथा तुम्हें वही सम्मान देगी जो सीता ने हनुमान् को दिया था जो उसके लिए श्रीराम का सुखद सन्देश लाए थे। कृपया मेरी पत्नी से कहना—"तुम्हारा पति रामगिरि आश्रम में रह रहा है और सकुशल

है। वह तुम्हारा कुशल-क्षेम जानने के लिए उत्सुक है। दुर्भाग्यवश वह अभी तुम्हें मिलने से मजबूर है। तुम्हारे विरह की व्यथा तथा मानसिक वेदना ने उसे दुर्बल बना दिया है। उसे विश्वास है कि उसके वियोग की पीड़ा तुम्हारे लिए भी कुछ कम दुःखदायी नहीं होगी। किन्तु तुम धैर्य नहीं खोना। अच्छे या बुरे दिन सदा नहीं रहते। सुख और दुःख तो पहिये के चक्कर से समान ऊपर-नीचे होते रहते हैं।

हे मेघ! तुम मेरे भाई के समान हो। अपनी भौजाई को सांत्वना देकर उसका कुशल-समाचार लेकर, मेरे पास लौट आना। हो सके तो उसकी कोई पहचान की वस्तु भी लेते आना। तुम्हारा यह उपकार मुझे नया जीवन प्रदान करेगा। मेरा यह कार्य सम्पन्न कर, तुम कहीं भी जाने के लिए स्वतन्त्र होगे। मैं सच्चे मन से कामना करता हूं कि तुम्हारी बिजली तुम से कभी अलग न हो।"

जब यक्ष अपना सन्देश सुना चुका, तो मेघ अलकापुरी को जाने के लिए यक्ष द्वारा बताए गये मार्ग पर चल पड़ा। पर्वतों के शिखरों, नदी-तटों और नगरों में विश्राम करता हुआ, वह कुछ दिनों में अलकापुरी जा पहुंचा। यक्ष द्वारा दिए गये निर्देशों की सहायता से मेघ को उसका घर खोजने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। जब उसने घर में प्रवेश किया तो देखा कि यक्ष की अभागिन स्त्री धरती पर लेटी हुई है। जब उसे मालूम हुआ कि मेघ उसके प्रिय पति का सन्देश लाया है तो उसकी जिन्दगी में एक नई लहर दौड़ गई और जब उसने प्रियतम का सन्देश सुना तो प्रसन्नता से गद्गद् हो उठी।

यक्ष के सन्देश की बात सारे नगर में फैल गई। उधर जब धनों के राजा कुबेर ने सन्देश का ब्योरा सुना तो उनका हृदय दया से पसीज गया। उन्होंने कर्तव्य-पालन में त्रुटि के लिए जो दण्ड यक्ष को दिया था, वह वापस ले लिया। इसके फलस्वरूप, यक्ष और उसकी प्राण-प्रिय पत्नी दण्ड की अवधि समाप्त होने से पहले ही मिल गए और प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करने लगे।

शब्दसंग्रह तथा टिप्पणियां

अश्वमेध यज्ञ—एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ जिसका अनुष्ठान प्राचीन काल में बड़े-बड़े प्रतापी राजा करते थे। इसमें एक घोड़े को देश में खुला छोड़ दिया जाता था और उसकी रक्षा के लिए राजा के सर्वाधिक वीर सैनिक उसका पीछा करते थे। ये सैनिक अश्व की स्वच्छन्द गति में बाधा डालने वालों का डट कर मुकाबला करते थे। अश्व के सुरक्षित लौट आने से यह समझा जाता था कि जिन प्रदेशों में से घोड़ा गुज़रा है, उनके शासकों ने राजा की अधीनता को स्वीकार कर लिया है।

आम्रकूट—अमरकंटक नामक पर्वत। विन्ध्याचल पर्वत का पूर्वी भाग।

इन्द्र— देवताओं का राजा।

उदयन— ईसा से 600 वर्ष पूर्व वत्स (वर्तमान प्रयाग) देश के राजा। वे उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से प्रेम करते थे। वह भी उन पर मुग्ध थी। राजा प्रद्योत ने उदयन को बन्दी बना लिया था किन्तु वे अपने मन्त्री की चतुराई से वहां से बच निकले थे और वासवदत्ता को भी अपने साथ भगा ले गए थे।

कल्पतरु— देवराज इन्द्र के उपवन में उपलब्ध सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाला एक वृक्ष।

कामधेनु— सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाली दिव्य गौ।

किन्नर— पर्वतों में रहने वाले उपदेवताओं की एक जाति। इन्हें किंपुरुष भी कहते हैं।

कुबेर— धन का देवता।

कुलपति—महर्षि, जिसके आश्रम में दस सहस्र छात्रों के रहने और विद्या ग्रहण करने की व्यवस्था होती थी।

कैलाश— हिमालय की उच्चतम श्रेणियों में एक प्रसिद्ध पर्वत; महाप्रभु शिव और उनकी पत्नी पार्वती का निवास-स्थान। कहते हैं कि लंका का राजा रावण इसे अपने राज्य में ले जाना चाहता था। जब उसने इसे जड़ से उखाड़ा तो यहां के निवासी आतंकित हो उठे। पार्वती तो डर के मारे शंकर से चिपक गईं। उनके भय का निवारण करने के लिए, शंकर ने अपनी शक्ति से उसे फिर नीचे दबा दिया।

क्रौञ्च-रन्ध्र—क्रौञ्च,हिमालय की ऊंची शाखाओं में एक पर्वत का नाम था। शिव के पुत्र स्कन्द ने एक ही तीर से उसे छेद दिया था। उसके अभिमान को चूर करने के लिए, शिव के परम भक्त ब्राह्मण-योद्धा परशुराम ने उसी पर्वत में एक बाण मारा था जो उसे बींधता हुआ दूसरी ओर निकल गया था। इससे जो छेद (रन्ध्र) बना था, उसे ही क्रौञ्चरन्ध्र कहते हैं।

गन्धमादन—सुगन्धित वनों के लिए विख्यात एक पर्वत विशेष का नाम।

गन्धर्व—सुन्दर उपदेवताओं की जाति। देवताओं की सभा के गायक।

गान्धर्व-विवाह—वर और कन्या में परस्पर प्रेम के आधार पर विना किसी अनुष्ठान के किया गया विवाह।

गम्भीरा— मालवा में एक छोटी नदी।

चर्मणवती— चम्बल नदी।

तमसा— वाल्मीकि की कुटिया के निकट बहने वाली नदी।

त्रिपुर—स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी पर, क्रमशः सोने, चाँदी एवं लोहे से निर्मित तीन नगर जिनमें देवताओं के शत्रु असुर निवास करते थे। देवताओं की प्रार्थना पर महाप्रभु शिव ने, इन्हें जला दिया था।

दशपुर— मध्य भारत में स्थित वर्तमान नगर मन्दसौर। यह राजा रन्तिदेव की राजधानी थी।

नारद —प्रसिद्ध देवर्षि। देवताओं के दूत जो उनके सन्देश मनुष्यों और मनुष्यों के सन्देश देवताओं तक पहुँचाते थे।

नैमिषेय यज्ञ—बारह वर्ष तक चलने वाला एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ।

पुरुषोत्तम— महाप्रभु विष्णु का एक अन्य नाम।

बलराम— श्री कृष्ण के भाई। कृष्ण के विपरीत उनका वर्ण श्वेत था। पाण्डवों और कौरवों के युद्ध में उन्होंने किसी का भी साथ नहीं दिया था। एक सारथि की हत्या का प्रायश्चित करने के लिए उन्हें सरस्वती नदी के तट पर जा कर रहना पड़ा था।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश (शिव)— हिन्दू त्रिमूर्ति। सर्वशक्तिमान् प्रभु के तीन रूप जो विश्व की सृष्टि, पालन तथा संहार के लिए उत्तरदायी हैं। ब्रह्मा स्रष्टा, विष्णु पालक तथा शिव संहारक हैं।

भरत— नाट्य एवं संगीत-शास्त्र के संस्थापक ऋषि। वे अप्सराओं को नाट्य-शास्त्र की शिक्षा देते थे।

मन्दाकिनी— गंगा नदी का अन्य नाम।

मन्दार— पारिजात तरु; देवराज इन्द्र के उपवन में उपलब्ध पाँच विशिष्ट वृक्षों में एक वृक्ष।

मलयाचल— दक्षिण भारत में पर्वत-शृंखला का नाम; चन्दन के वृक्षों के लिए विख्यात।

मारीच— रावण के मामा का नाम; 2 एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम।

यक्ष— उपदेवताओं की एक जाति। वे प्रायः धन के देवता कुबेर की सेवा में रहते हैं।

रन्तिदेव— प्राचीन भारत के एक अत्यन्त धर्म-परायण तथा दानी राजा का नाम। [illegible]

शब्दसंग्रह तथा टिप्पणियां

अश्वमेध यज्ञ—एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ जिसका अनुष्ठान प्राचीन काल में बड़े-बड़े प्रतापी राजा करते थे। इसमें एक घोड़े को देश में खुला छोड़ दिया जाता था और उसकी रक्षा के लिए राजा के सर्वाधिक वीर सैनिक उसका पीछा करते थे। ये सैनिक अश्व की स्वच्छन्द गति में बाधा डालने वालों का डट कर मुकाबला करते थे। अश्व के सुरक्षित लौट आने से यह समझा जाता था कि जिन प्रदेशों में से घोड़ा गुज़रा है, उनके शासकों ने राजा की अधीनता को स्वीकार कर लिया है।

आम्रकूट—अमरकंटक नामक पर्वत। विन्ध्याचल पर्वत का पूर्वी भाग।

इन्द्र— देवताओं का राजा।

उदयन— ईसा से 600 वर्ष पूर्व वत्स (वर्तमान प्रयाग) देश के राजा। वे उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से प्रेम करते थे। वह भी उन पर मुग्ध थी। राजा प्रद्योत ने उदयन को बन्दी बना लिया था किन्तु वे अपने मन्त्री की चतुराई से वहां से बच निकले थे और वासवदत्ता को भी अपने साथ भगा ले गए थे।

कल्पतरु— देवराज इन्द्र के उपवन में उपलब्ध सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाला एक वृक्ष।

कामधेनु— सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाली दिव्य गौ।

किन्नर—पर्वतों में रहने वाले उपदेवताओं की एक जाति। इन्हें किंपुरुष भी कहते हैं।

कुबेर— धन का देवता।

कुलपति—महर्षि, जिसके आश्रम में दस सहस्र छात्रों के रहने और विद्या ग्रहण करने की व्यवस्था होती थी।

कैलाश— हिमालय की उच्चतम श्रेणियों में एक प्रसिद्ध पर्वत; महाप्रभु शिव और उनकी पत्नी पार्वती का निवास-स्थान। कहते हैं कि लंका का राजा रावण इसे अपने राज्य में ले जाना चाहता था। जब उसने इसे जड़ से उखाड़ा तो यहां के निवासी आतंकित हो उठे। पार्वती तो डर के मारे शंकर से चिपक गईं। उनके भय का निवारण करने के लिए, शंकर ने अपनी शक्ति से उसे फिर नीचे दबा दिया।

क्रौञ्च-रन्ध्र—क्रौञ्च,हिमालय की ऊंची शाखाओं में एक पर्वत का नाम था। शिव के पुत्र स्कन्द ने एक ही तीर से उसे छेद दिया था। उसके अभिमान को चूर करने के लिए, शिव के परम भक्त ब्राह्मण-योद्धा परशुराम ने उसी पर्वत में एक बाण मारा था जो उसे बींधता हुआ दूसरी ओर निकल गया था। इससे जो छेद (रन्ध्र) बना था, उसे ही क्रौञ्चरन्ध्र कहते हैं।

गन्धमादन—सुगन्धित वनों के लिए विख्यात एक पर्वत विशेष का नाम।

हैं कि उसने इतने अधिक यज्ञ किए थे कि उनमें बलि दिए गए प
चर्मणवती नदी का रूप धारण कर लिया था।

लौहत्य– ब्रह्मपुत्र नदी।

वरुण – अन्तरिक्षीय जलों का देवता।

वाल्मीकि– श्री राम के समकालीन महर्षि; रामायण के रचयिता।

विदूषक – संस्कृत नाटक में नायक का मनोविनोद करने वाला विश्वास-पात्र मित्र।

विद्याधरी – एक विशेष देवयोनि की कन्या।

विश्वजित् यज्ञ – विश्व-व्यापी विजय प्राप्त कर राजा इस यज्ञ का अनुष्ठान
इसमें सब कुछ दान-दक्षिणा में दे दिया जाता था।

विश्वामित्र – इन्होंने क्षत्रिय वंश में जन्म लेकर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया
ब्रह्मर्षियों में गिने जाने लगे। जब इन्होंने हज़ारों वर्षों तक घोर तपस्य
देवराज इन्द्र डर गए कि कहीं महर्षि विश्वामित्र उन्हें अपने तपोबल से अ
कर दें। अतः उन्होंने सर्वाधिक सुन्दर अप्सरा मेनका को उनका तप भंग करने
भेजा। अप्सरा, प्रेम के देवता कामदेव की सहायता से निर्दिष्ट कार्य में सफ
विश्वामित्र ने बहुत वर्षों तक मेनका के साहचर्य का आनन्द उठाया जिसके फल
अप्सरा ने शकुन्तला को जन्म दिया।

वेत्रवती – वर्तमान बेतवा नदी।

व्यास– एक सुप्रसिद्ध देवर्षि।

शक्ति– अत्यन्त शक्तिशाली दिव्य अस्त्र का नाम।

शची तीर्थ– इन्द्र की पत्नी शची से सम्बद्ध गंगा नदी के तट पर एक पवित्र स्था

सगर– सूर्यवंशी राजा। एक बार उनके अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा महर्षि कपिल
आश्रम के निकट चरता हुआ पाया गया और सगर के पुत्रों ने महर्षि को चोर ठहराया
महर्षि कपिल के भयंकर शाप ने सगर के साठ हज़ार पुत्रों को जलाकर भस्म कर दिया।
तब सगर के प्रपौत्र राजा भगीरथ निरन्तर तप की सहायता से दिव्य नदी गंगा को
स्वर्ग से पृथ्वी पर उतार लाये और उसके पवित्र जल से अपने पूर्वजों का उद्धार किया।

सरयू – अयोध्या के निकट एक नदी।

सरस्वती – 1. ब्रह्मा की मानस-पुत्री तथा विद्या की देवी, 2. एक नदी का नाम।

सिद्ध– उपदेवताओं की जाति जिन्हें कई दिव्य शक्तियां प्राप्त हैं।

सुबाहु – राक्षसी ताडका का पुत्र।

□□